ॐ
नमः श्री सिद्धेभ्यः

अष्टपाहुड़ प्रवचन

श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत अष्टपाहुड़ ग्रन्थ पर
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के अलग से उपलब्ध प्रवचन

प्रवचन - 1

भावपाहुड़, गाथा - 149, 150, 151

वीर संवत् 2487, श्रावण शुक्ल 5, बुधवार, दिनांक-16-08-1961

यह कुन्दकुन्दाचार्य महाराज कृत अष्टपाहुड़ है। उसमें यह भावपाहुड़ की व्याख्या चलती है। भावपाहुड़ अर्थात् आत्मा का जो त्रिकाल शुद्ध चैतन्यमूर्ति वीतरागविज्ञानघन स्वभाव है, उसकी भावना करके, उसकी शुद्धदशा प्रगट करना और वह शुद्धता प्रगट करके केवलज्ञान आदि अनन्त चतुष्टय प्रगट करना, उसे यहाँ भावसार और भावशुद्ध कहते हैं। १४८ (गाथा) हुई। अब १४९ गाथा।

दंसणणाणावरणं मोहणियं अंतराइयं कम्मं।
णिट्ठवइ भवियजीवो सम्मं जिणभावणाजुत्तो ॥१४९॥

क्या कहते हैं? देखो! **सम्यक् प्रकार जिनभावना से युक्त भव्यजीव है...** जो कोई भव्य अर्थात् लायक प्राणी है, वह **सम्यक् प्रकार जिनभावना से युक्त...** जिनभावना अर्थात् सम्यग्दर्शन। सम्यग्दर्शन अर्थात् त्रिकाली अनन्त चतुष्टय सम्पन्न भगवान अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य—ऐसा जिसका त्रिकाली एकरूप स्वरूप है, उसकी अन्तर की एकाग्रता की, प्रतीति की भावना द्वारा उसे केवलज्ञान आदि अनन्त (गुण) प्रगट हो, इसलिए उसे जिनभावना कहने में आता है। कहो, समझ में आया?

सम्यक् प्रकार जिनभावना से युक्त... अपना स्वरूप अनन्त चतुष्टय(रूप) है, उसकी अन्तर में एकाग्रता भावनासहित **भव्य जीव है, वह ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय...** ये चार घातिकर्म हैं, उनका **निष्ठापन करता है...** (अर्थात्) उसका नाश करता है। कहो, समझ में आता है? भगवान आत्मा अपना शुद्ध चैतन्यस्वरूप है, उसकी एकाग्रतारूप जिनभावना करने से अपनी पर्याय में अनन्त चतुष्टय (आदि की) पूर्णता प्रगट होती है। ऐसी एकाग्रता-भावना जो अनन्त चतुष्टय का कारण है, उसको यहाँ जिनभावना कहा गया है। बराबर है? 'जिनभावना' वीतरागीविज्ञानघन अपना चैतन्यस्वभाव, उसकी एकाग्रता होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र है, वह जिनभावना है। उससे पूर्ण सर्वज्ञपद, पूर्ण दर्शन, पूर्ण आनन्द, पूर्ण वीर्य (आदि) प्रगट हो, उसको यहाँ जिनभावना कहने में आता है। कहो, समझ में आया? समझ में आता है?

भावार्थ : दर्शन का घातक दर्शनावरण कर्म है... अपना अनन्त दर्शनस्वरूप अपने को (और) पर को सामान्य देखना, ऐसा पूर्ण स्वभाव(मय) है। उसको घातने में घातिकर्म—दर्शनावरणीयकर्म निमित्त है। पर्याय तो अपने से घात होती है, परन्तु उसमें निमित्त दर्शनावरणीयकर्म का घातक(पना) कहने में आता है। **ज्ञान का घातक ज्ञानावरण कर्म है...** अपना अनन्त ज्ञान तीन काल-तीन लोक जानने की शक्ति रखता है—ऐसा आत्मा, उसकी पर्याय में अपनी हीन-कम दशा के कारण जो आत्मा का त्रिकाली स्वभाव प्रगट होने में घात हो रहा है, उसमें जो निमित्त पड़ता है, (ऐसे) ज्ञानावरणीय को निमित्तपने 'घात किया' ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? **सुख का घातक मोहनीय कर्म है...** लो। यहाँ तो कर्म... कर्म... अपना आत्मा आनन्दस्वरूप शुद्ध अनाकुल आत्मरसस्वरूप है। अनाकुल आत्मरसस्वरूप है, उसकी वर्तमान पर्याय में जो अपने उल्टे पुरुषार्थ से आनन्द का घात हो रहा है, उसमें मोहनीयकर्म निमित्त पड़ता है तो मोहनीयकर्म ने अपने सुख का 'घात किया' ऐसा कहने में आता है। कहो, समझ में आया? समझ में आता है?

वीर्य का घातक अन्तराय कर्म है... अपना अनन्त वीर्य, अनन्त ज्ञान, दर्शन,

आनन्द की रचना की शक्ति—स्वभाव-सामर्थ्य... अपना अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द स्वभाव की रचनारूप सामर्थ्य, ऐसा जो अपना अनन्त वीर्य है, उसकी परिणति में उल्टी परिणति के कारण—विपरीत परिणति के कारण अनन्त वीर्य का विकास होना (चाहिए, उसका) घात हुआ है... विकास होना (चाहिए), उसका घात हो रहा है। उस वीर्य के घात में अन्तरायकर्म को निमित्त कहने में आता है। ओहोहो! समझ में आता है? धन्नालालजी!

अपना विकास अपने से है। अनन्त दर्शन, ज्ञान, आनन्द जो स्वभाव है, उसमें दृष्टि एकाग्र होकर पर्याय में ऐसा विकास होना (चाहिए), वह विकास नहीं करता (और) अपनी अल्प पर्याय में परिणति करता है तो वीर्य का घात हुआ, उसमें वीर्यान्तराय का निमित्त पड़ा, तो वीर्यान्तराय ने 'घात किया', ऐसा व्यवहार से कहने में आया है। **इनका नाश...** वह चार घातिकर्म जो निमित्तरूप कहे, इनके नाश को **सम्यक् प्रकार जिनभावना...** कहिये। **जिन आज्ञा मानकर...** देखा! उसका नाश करने में कारण कौन है? कि **सम्यक् प्रकार जिनभावना...** सर्वज्ञ वीतराग की आज्ञा यह है कि वीतरागस्वभाव प्रगट करो और राग तथा अज्ञान स्वभाव का नाश करो। अपने त्रिकाली शुद्ध चैतन्य वीतरागविज्ञानघन पड़ा है, उसका विकास (कर) वीतरागपना लाओ और राग तथा अज्ञानभाव का नाश करो। वह वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा की आज्ञा है।

यह आज्ञा मानकर जो अपने स्वभाव सन्मुख होकर सम्यग्दर्शन हुआ, तो वह चार घातिकर्म के नाश का कारण **सम्यक् प्रकार जिनभावना...** कहिये। **जिन आज्ञा मानकर जीव-अजीव आदि तत्त्व का यथार्थ निश्चय कर...** मेरा जीव ज्ञायकस्वभाव पूर्ण है, पर्याय में अपूर्ण है, निमित्त में दूसरी अजीव आदि वस्तु है, अपनी पर्याय में पुण्य-पाप आस्रव, बन्ध आदि विकारीदशा उत्पन्न होती है और मेरे स्वभाव के आवश्रय से मेरी अपूर्ण और पूर्ण शुद्धि—संवर-निर्जरा, यह अपूर्ण शुद्धि और पूर्ण शुद्धि मोक्ष, यह अपने शुद्धस्वभाव के आश्रय से उत्पन्न होते हैं।—ऐसे सात तत्त्व का यथार्थ श्रद्धान करना। कहो, समझ में आया? देवीलालजी! इसकी सद्भावना करना, कहते हैं। देखो! **जिन आज्ञा मानकर...** जिन आज्ञा इसको कहते हैं, भगवान अपना वीतरागीविज्ञान

चैतन्यदल घन, उसके सन्मुख होकर उसकी भावना अर्थात् एकाग्रता करना, उसमें जीव-अजीव (आदि सात तत्त्व) का ज्ञान आ गया। जीव का ज्ञान आ गया, अपनी पर्याय निर्मल हो, उसका नाम संवर-निर्जरा आ गये; पूर्ण हो, उसका नाम मोक्ष आ गया और जितनी अपनी पर्याय रुकती है पुण्य-पाप, आस्रव, बन्ध में, उसको विकार कहते हैं। वह आस्रव, बन्ध और पुण्य-पाप भी उसमें आ गये।

जीव-अजीव आदि तत्त्व का यथार्थ निश्चय कर श्रद्धावान हुआ हो... यथार्थ अपना शुद्ध परमात्मस्वभाव अजीव से भिन्न, विकार से भिन्न है—ऐसे अपने स्वभाव का श्रद्धावान हुआ हो, **वह जीव करता है...** वह ऐसी जिनभावना करनेयोग्य है। समझ में आया? जिसको निमित्त को मिलाना हो और निमित्त को जुटाना हो, (जिसे) निमित्त से लाभ-नुकसान है—ऐसी भावना है, वह मिथ्यात्वभावना है, वह जिनभावना नहीं। वह मिथ्याभावना है। जिसको पुण्य-पाप के मलिन परिणाम करना हो और उससे मुझे लाभ हो, ऐसी भावना (हो, उसे) भी मिथ्यात्वभावना कहते हैं, अजिनभावना (कहते हैं)। अजिनभावना... यह जिनभावना है... अपना चैतन्य शुद्ध परमात्मस्वभाव को जानकर, प्रतीति कर, अजीव मुझसे भिन्न है, पुण्य-पाप आस्रव आदि मलिन परिणाम भी मेरे स्वभाव से भिन्न हैं, ऐसे सात तत्त्व की श्रद्धा कर स्वभाव-सन्मुख एकाग्रता की भावना करना, उसका नाम जिनभावना कहने में आता है। समझ में आया?

इसलिए जिन आज्ञा मानकर... 'जिनआज्ञा' का अर्थ ही यह है कि वीतरागीविज्ञान प्रगट करना, अरागी—निर्मलदशा प्रगट होना और मलिनदशा का नाश (होना), वह वीतराग की आज्ञा है। बहुत संक्षिप्त में-संक्षिप्त में यह आज्ञा है। **जिन आज्ञा मानकर यथार्थ श्रद्धान करने का यह उपदेश है।** यथार्थ श्रद्धान करना.... मैं चैतन्य पूर्ण हूँ (ऐसी) उसकी एकाग्रता (करूँ) और राग की, पुण्य की एकाग्रता छोड़ दूँ—वही वीतराग की आज्ञा है, वही सात तत्त्व की श्रद्धा है। ऐसी श्रद्धा करनेवाला आत्मा की भावना करता है। ऐसी श्रद्धा बिना आत्मा की भावना नहीं कर सकता। राग की भावना करता है, जिससे अनन्त चतुष्टय मैला होता है और उसे चार गति में रुलना पड़ता है।

आगे कहते हैं कि इन घातियाकर्मों का नाश होने पर 'अनन्त चतुष्टय' प्रगट होते

हैं। देखो! यह जिनभावना करने से चार घाति (कर्म) नाश होते हैं और नाश होने से चार गुण उत्पन्न होते हैं। चार घाति (कर्म) का नाश होता है तो चार गुणपर्याय उत्पन्न होती है।

बलसोक्खणाणदंसण चत्तारि वि पयडा गुणा होंति।
णट्ठे घाइचउक्के लोयालोयं पयासेदि॥१५०॥

'**पायडा गुणा होंति...**' अन्तर में (सब) गुण प्रगट होते हैं।

पूर्वोक्त... अर्थात् १४९ गाथा में कहा... जो जिनभावना—चैतन्य परमात्मस्वभाव की एकाग्रतारूप भावना—कही, उससे घातिकर्म चतुष्टय का नाश होने पर... उससे **चार घातिया कर्मों का नाश होने पर...** अनन्त बल, अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, बेहद—अनन्त दर्शन **ये चार गुण प्रगट होते हैं।** ये (गुण) शक्ति में है, उस शक्ति की एकाग्रता की भावना से पर्याय में वह शक्ति व्यक्त-प्रगट होती है। कहो, समझ में आया? लो, यह भगवान होने की कला है। भगवान कैसे होते हैं? कहो, यह समाधिमरण कैसे होता है? देह छूटने के समय हमें समाधिमरण कैसे करना? यहाँ वही कहते हैं। समाधिमरण... अपना स्वरूप पवित्र है और राग मलिन है, मैं पूर्ण हूँ और अजीव भिन्न है। बस, इतनी अन्दर श्रद्धा करना और एकाग्रता होना और एकाग्रता में देह छूट जाये, वह समाधिमरण है। अनन्त काल में मरण की सन्धि में कभी ऐसा मरण (एक) सेकेण्ड भी किया नहीं। मरण के पलट काल में.... एक भव से दूसरे भव में जाने (के समय) वह पलट काल में—मरण की सन्धि में ऐसा समाधिमरण करनेवालों को एकाध भव में केवलज्ञान हो जायेगा। समझ में आया?

देह तो छूट जायेगा, अवश्य छूटेगा। छूटा (-भिन्न) है तो छूटेगा। संयोगी है तो संयोग छूट जायेगा। अपना स्वभाव... वह संयोग और स्वभाव के बीच में जो राग और द्वेष की एकता की मिथ्यात्वभावना की है, उसको छोड़कर चैतन्य ज्ञाता-दृष्टा की भावना करना, उस भावना से समाधिमरण होता है, उसी भावना से केवलज्ञान होता है। उस भावना से भविष्य में... ऐसा क्यों लिया? कि इस भव में तो केवलज्ञान है नहीं, तो ऐसा आया। समझ में आया? तो यह भावना करने से समाधि मृत्यु होती है। उसे कोई

ऐसा रटे और सीखे और (कहे कि) भगवती आराधना सुन लो। क्या सुन ले? (जिसे) सुने, वह तो शब्द है, जड़ है। अपनी भगवती आराधना चैतन्य ज्ञानानन्द राग से रहित इसकी श्रद्धा-ज्ञान-रमणता की परिणति को आराधना कहने में आती है। वह आराधना करनेवाले को देह का संयोग छूटने के काल में समाधिमृत्यु होती है और भविष्य में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति का एकत्व होकर वह अनन्त चतुष्टय को प्राप्त कर आराधक हो जाता है। पोपटभाई! यह है।

शुरुआत, मरण और केवल (ज्ञान)—यहाँ तीन बातें ली हैं। जघन्य-मध्यम और उत्कृष्ट। समझ में आया? आचार्य तो एकदम चतुष्टय की बात करते हैं, परन्तु उसकी भावना... जानते हैं कि हम पंचम काल के सन्त हैं, हमको केवलज्ञान इस पंचम काल-समय में उत्पन्न नहीं होगा, परन्तु हमारी भावना शुद्ध चैतन्य की ओर के झुकाव में जो चलती है, वही भावना (सहित) देह छूटेगी और उसी भावना से केवल(ज्ञान) लेंगे। भविष्य में मनुष्यभव प्राप्त कर अनन्त चतुष्टय इस भाव से ही प्राप्त होंगे। दूसरे कोई क्रियाकाण्ड से यह प्राप्त होगा नहीं। बराबर है राजमलजी? यह समाधिमरण है। (कोई) ऐसा कहे कि सुनाओ, लो, समाधिमरण सुनाओ। क्या कहते हैं? सुनाओ। हमको समाधिमरण सुनाओ, सुनाओ। यह समाधिमरण। वह स्वयं अपने को सुनावे-सुनाये तो उसकी समाधि होती है।

घातियाकर्मों का चतुष्टय का नाश होने पर अनन्त ज्ञान-दर्शन-सुख-बल ये चार गुण प्रगट होते हैं। इसका अर्थ क्या किया? कि अपने आत्मा में जो शक्ति है, वह प्रगट होती है। प्रगट होती है, तो वर्तमान पर्याय में (जो) अल्प ज्ञान, अल्प दर्शन, अल्प वीर्य, अल्प आनन्द का अंश अथवा दुःख या विकार है, उसका नाश करके पूर्ण अनन्त ज्ञान आदि प्राप्त करना। मेरा पूर्ण आनन्द आदि अनन्त चतुष्टय स्वभाव है, ऐसी जिनभावना करने से चार गुण जो शक्तिरूप हैं, (वह) प्रगट हो गये। पर्याय में उस गुण की पर्याय प्रत्यक्ष होगी। जीव के गुण प्रगट होवे, तब लोकालोक को प्रकाशित करता है, लो। यह चौथा बोल रखा। '**लोकालोकं प्रकाशयति...**' लोक और अलोक (सहित) तीन काल-तीन लोक की कोई बात सर्वज्ञ के (जानने में) बाकी नहीं रहती, ऐसा उसको प्रकाशित

करते हैं। **घातियाकर्मों का नाश होने पर...** यहाँ तो (कहा कि) घातिकर्म का नाश होता है, परन्तु नाश किसने किया? यह सब व्यवहार के कथन आते हैं।

भावार्थ :- घातियाकर्मों का नाश होने पर अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त बल ये अनन्त चतुष्टय प्रकट होते हैं। अनन्त चतुष्टय प्रगट करते हैं तो घातिकर्म का नाश होता है। **अनन्त दर्शन-ज्ञान से छह द्रव्यों से भरे हुए इस लोक...** अनन्त दर्शन-ज्ञान की पर्याय अपने स्वभाव में शक्तिरूप है, वह उसकी (-स्वभाव की) एकाग्रता द्वारा जो प्रगट हुई, तो **अनन्त दर्शन-ज्ञान से छह द्रव्यों से भरे हुए इस लोक...** छह द्रव्य से भरा लोक-जगत... **लोक में अनन्तानन्त जीवों को...** उसमें जीव की संख्या अनन्त-अनन्त है, **इनसे भी अनन्तानन्त गुणे पुद्गलों को...** जीव की (संख्या) अनन्तानन्त और पुद्गल उससे अनन्तानन्त। उससे (-जीव से) अनन्तानन्त गुने। **और धर्म, अधर्म, आकाश ये तीन द्रव्य...** धर्म, अधर्म और आकाश ये तीन द्रव्य हैं। वे (जीव और पुद्गल)—दोनों अनन्तानन्त लिये। **और असंख्यात कालाणु...** यहाँ कालाणु चाहिए। समझ में आया? इस कालाणु (शब्द में) 'लो' हो गया है, यहाँ 'ला' चाहिए। असंख्यात कालाणु... काल के अणु। भगवान सर्वज्ञ परमात्मा ने असंख्य (काल) द्रव्य देखे हैं।

इन सब द्रव्यों की... इन सर्व द्रव्यों की **अतीत...** भूतकाल की जितनी पर्यायें हुई हैं, वह अनन्त पर्यायें... वर्तमान में अनन्त गुण की अनन्त हैं और भविष्य में अनन्त गुण की अनन्त होंगी। **अतीत, अनागत और वर्तमानकाल सम्बन्धी अनन्त पर्यायों को भिन्न-भिन्न...** देखो! देखो! यहाँ तो ऐसा कहते हैं। कितने ही कहते हैं कि ज्ञान-दर्शन देखते हैं, परन्तु सामान्यपने देखते हैं, समय-समय की पर्याय भिन्न करके नहीं देखते। समझ में आया? देवीलालजी! केवलज्ञान है, (वह) लोकालोक को संक्षिप्त में सामान्य(रूप) देखता है, परन्तु समय-समय का पृथक् करके—भेद करके देखता है, ऐसा नहीं है। यहाँ कहते हैं कि न्यारे-न्यारे को (प्रत्येक) काल (समय) में देखता है। अनन्त गुण की एक-एक पर्याय प्रत्येक-प्रत्येक पृथक्-पृथक् भगवान के ज्ञान में न्यारी-न्यारी—भिन्न-भिन्न (दिखती है)। इस समय की, इस द्रव्य की, इस काल की...

इस समय की इस द्रव्य की इस काल की (यह पर्याय है)—ऐसे तीन काल-तीन लोक भगवान के ज्ञान में आये।

मुमुक्षु : यह विकल्प.....

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प कहाँ से होता है? ले! कहाँ उठता है? क्या विकल्प उठता है? किस प्रकार का विकल्प उठता है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। विकल्प उठता नहीं। वह (अज्ञानी) ऐसा मानता है कि समय-समय की भिन्न-भिन्न पर्याय अनन्त द्रव्य की है, ऐसा जो भगवान देख ले, तो अपना पुरुषार्थ करने का समय तो आयेगा, तब आयेगा। अपने कारण से तो कुछ होगा नहीं। ऐसा कहता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प क्या? विकल्प तो राग है। उन्हें (भगवान को) विकल्प तो है ही नहीं। परन्तु वह तीन काल-तीन लोक भूत की अनन्त अवस्था, भविष्य की अनन्त (और) वर्तमान अनन्त गुण की अनन्त अवस्था... वर्तमान भी अनन्त हैं न? सबको भगवान एक समय में पृथक्-पृथक् जाने तो जिस द्रव्य की जिस काल में जो पर्याय होनेवाली है, ऐसा जाना। तो आगे-पीछे तो पर्याय होगी नहीं। राजमलजी! क्या करना? कहो, इसलिए कहते हैं कि सामान्य देखे। सामान्य देखे, परन्तु इस समय में यही पर्याय होगी, ऐसा भिन्न (देखे) नहीं। ऐसा है ही नहीं। कहो, वाडीभाई! क्या है तुम्हारे पिता को? समझ में आया? भिन्न-भिन्न पर्याय देखे, (यहाँ) ऐसा कहते हैं।

सब द्रव्यों की अतीत, अनागत और वर्तमानकाल सम्बन्धी अनन्त पर्यायों... जिस द्रव्य की जिस समय में होती है, उस समय का ज्ञान भगवान को है। दूसरे समय की यह पर्याय है, उसका ज्ञान है। तीसरे समय की ये पर्याय है, उसका ज्ञान है। सब—तीन काल-तीन लोक की पर्यायों का ज्ञान भगवान के ज्ञान में आ गया है। **भिन्न-भिन्न एक समय में स्पष्ट देखता है...** दर्शन से। और ज्ञान से एक-एक काल जानता है। कोई कहता है कि यह दशा कब हो गयी? भगवान! परन्तु ऐसी केवलज्ञानपर्याय की ताकत

चैतन्य में है, वह तो बताते हैं। अनन्त चतुष्टय मुझमें (भी) है। भगवान ने (शक्तिरूप) है, उसमें एकाग्र होकर प्रगट किया। तो (जिसने) प्रगट किया, उसने जैसा देखा है, ऐसा ही होता है—ऐसी प्रतीति करनेवाले को, स्वचतुष्टय—अनन्त ज्ञान-सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त आनन्द और बल जिसकी शक्ति में पड़े हैं, उसके सन्मुख एकाग्रता होती है, तब सर्वज्ञ भगवान की प्रतीति उसको आती है, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? भगवान का एक समय का ज्ञान तीन काल-तीन लोक को स्पष्ट देखता है। आगे-पीछे (देखना ऐसा) कुछ है नहीं। धन्नालालजी! ऐसी प्रतीति जिसको आयी, वह तो सर्वज्ञ का नन्दन हो गया। सर्वज्ञ का लघुपुत्र हो गया। (ज्येष्ठ) पुत्र चारित्र(वान मुनि) हैं। समझ में आया?

भगवान आत्मा... एक समय में तीन काल-तीन लोक जैसा हुआ, होता है और होगा (वह देखते हैं)। ये (होने के) बाद में जानेंगे (ऐसा) नहीं। एक समय में तीन काल-तीन लोक जानते हैं (और)ऐसा ही परिणमन होता है, ऐसा ही जानते हैं। 'गुण की श्रद्धा का या चारित्र का पुरुषार्थ करना हमारे अधिकार की बात तो रही नहीं। वह तो समय-समय (जैसी होनेवाली) होगी (ऐसी) होगी'—ऐसा (अज्ञानी) कहते हैं। समझ में आया देवीलालजी? अरे! अरिहन्त का उसको ज्ञान नहीं (और) बिना भान के पूजा करो, भक्ति करो, यात्रा करो और ऐसा करो और वैसा करो। मर जा न, कुछ नहीं है उसमें। वह तो राग की मन्दता हो तो कदाचित् कुछ पुण्य बँध जायेगा। उसमें धरम-बरम तीन काल-तीन लोक में है नहीं। भगवान आत्मा एक समय में केवलज्ञान सम्पन्न परमात्मा हो सकता है। तो मैं भी परमात्मा हो सकता हूँ। क्योंकि वे भी आत्मा हैं (और) उनकी पर्याय प्रगट है। मैं भी आत्मा हूँ (और पूर्ण) पर्याय (प्रगट करने) की शक्ति मैं रखता हूँ। तो शक्तिवान की प्रतीति होती है, तब सर्वज्ञ की प्रतीति आती है। उसमें पुरुषार्थ आ गया। समझ में आया? दूसरा पुरुषार्थ क्या कूदना है? क्यों राजमलजी? क्या कूदना है? छोड़ना है?

अहो! भगवान का ज्ञान एक समय में तीन काल-तीन लोक की (स्थिति) जैसी होती है ऐसा जानता है। तब कहे, नहीं। ऐसा हो तो अकालमृत्यु क्यों कही भगवान ने?

अरे! भगवान ने अकाल मृत्यु तो निमित्त की प्रधानता से कही है। भगवान के ज्ञान में नहीं आया कि उस समय में देह छूट जायेगा? अकाल मृत्यु है क्या निश्चय में? समझ में आया? भगवान के ज्ञान में (आया कि) उस समय में देह छूटनेवाला है तो छूटेगा ही। तीन काल में अन्तर नहीं (पड़ता)। आगे पीछे... घटना होती है, घट जाती है तो दिखे ऐसा कि (अकाल) मृत्यु होता है। वह तो निमित्त का कथन है। ऐसा पूर्व का परमाणु का बन्ध हुआ (था उसका) कथन किया है। बाकी तो एक समय मात्र भी आगे-पीछे मृत्यु होती नहीं। जिस समय में देह छूटनेवाला (है, वह) तीन काल-तीन लोक में बदलता नहीं। ऐसा केवलज्ञान ने जाना।—ऐसा केवलज्ञान अपनी प्रतीति में आया। कब? कि अपने स्वभाव सन्मुख होकर एकाग्र हो तो। समझ में आया? उसका नाम मोक्षमार्ग का पुरुषार्थ कहने में आता है। पुरुषार्थ क्या जड़ में करना है? क्या राग को टालने का करना है? क्या करे?

कहते हैं, भगवान... अनन्तानन्त जीवद्रव्य को, उससे अनन्तानन्त पुद्गलद्रव्य परमाणु को, एक आकाश, धर्मास्ति, अधर्मास्तिद्रव्य और असंख्य कालाणुद्रव्य—वह सब द्रव्य की भूतकाल की अनन्त दशा, वर्तमान की अनन्त दशा, भविष्य के प्रवाह की अनन्त दशा—पर्याय जब जहाँ-जहाँ होनेवाली है, (उन) सबको भगवान एक समय में जानते हैं। **एक समय में स्पष्ट देखता है और जानता है।** कहो। ऐसी जिसको प्रतीति हुई, श्रद्धा में आया, वह बात श्रद्धा में आयी तो स्वभाव सन्मुख हुए बिना श्रद्धा होती नहीं। समझ में आया? धन्नालालजी! बहुत गड़बड़ चलाते हैं केवलज्ञान (के सम्बन्ध) में।

अभी भी आया है थोड़ा कि तुम भगवान का नाम लेकर अकालमृत्यु (नहीं है ऐसा) कहते हो, तो भगवान तो अनादि (देखते) हैं, अनन्त (देखते) हैं, (तो) ऐसे एक समय (के ज्ञान में) गड़बड़ हो जायेगी। ले! क्या गड़बड़ हो जायेगी?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, कहते हैं कि ऐसा अकालमृत्यु नहीं मानेगा तो भगवान ने अनन्त देखा है, अनादि देखा है, तो (काल के एक) अंश में क्या अनादि देखा है? आदि तो देखा नहीं। परन्तु आदि है ही कहाँ? जैसा अनादि है, ऐसा देखा। देखे बिना

बात रही है, ऐसी बात तीन काल में नहीं है। अनन्त काल है, तो ऐसा कि उसका अन्त तो नहीं देखा। परन्तु अन्त है कहाँ? जैसा... शुरुआत नहीं, अन्त नहीं, पर्याय की रचना नयी नहीं होती। पर्याय तो अनादि से चली आती है। जैसा द्रव्य अनादि से है, ऐसी पर्याय भी (अनादि से है)। ऐसे द्रव्य जैसे अनन्त काल रहेगा, वैसे उसकी पर्याय भी अनन्त काल रहेगी। जैसा है, ऐसा भगवान के अनन्त ज्ञान में अनन्त का अनन्त ज्ञान आ गया। अनन्त का ज्ञान (आया तो) वह चीज़ परिमित है—ऐसा ज्ञान आ गया? ऐसा है (नहीं)। अनन्त का अनन्तपने ज्ञान हो गया। यह बहुत सूक्ष्म बात है! यह केवलज्ञान (में) क्रमबद्ध आने के बाद भारी गड़बड़ उठी। क्रमबद्ध (में ऐसा) आया कि (सब) क्रमबद्ध होता है। ऐई... गड़बड़... गड़बड़... गड़बड़...

यहाँ कहते हैं कि भगवान का ज्ञान और भगवान का दर्शन छह द्रव्य की तीन काल की समय-समय की जितनी पर्यायें हैं, (उसे) एक समय में पृथक् देखते हैं। समझे? और भविष्य में होगा, तब देखेंगे—ऐसा नहीं है। सर्वज्ञ तो वर्तमान समय में अनन्त काल बाद होनेवाली पर्याय को पहले से देखते हैं। अनन्त काल (पहले) चली गयी वस्तु (की) पर्याय, वह भी देखते हैं। वह ज्ञानस्वभाव इतना माहात्म्यवन्त है। इसका माहात्म्य कोई अपूर्व है। ऐसी ज्ञानपर्याय की, ओहोहो! सामर्थ्य! वह पर्याय की सामर्थ्य माननेवाला, द्रव्य की सामर्थ्य माने बिना पर्याय की सामर्थ्य नहीं मान सकता। समझ में आया? एक समय की पर्याय की इतनी सामर्थ्य है तो ऐसी अनन्त पर्यायें जिसके अन्दर में पड़ी है—ऐसा भगवान ध्रुव ज्ञायक आत्मा पूर्णानन्द पूर्ण ज्ञानघन है, ऐसी प्रतीति हुए बिना पर्याय की प्रतीति सच्ची होती नहीं। द्रव्य की प्रतीति बिना अंश की प्रतीति सच्ची नहीं होती। कहो, समझ में आया? सब गड़बड़ करते हैं बड़े। तुम्हारे करते घर में... कहो, समझ में आया? इसके काका।

एक समय में स्पष्ट देखता है और जानता है। देखो! **अनन्त सुख से अत्यन्त तृप्तिरूप है...** अपने नित्यानन्द प्रभु भगवान आत्मा में **शक्तिरूप आनन्द था।**, उसकी रुचि, परिणति, सम्यक् जिनभावना करने से अनन्त आनन्द प्रगट हुआ। तृप्तरूप है... तृप्तरूप है। अनन्त आनन्द से तृप्त-तृप्त पूर्ण आनन्द से कृतकृत्य हो गया। ऐसा भगवान

अनन्त आनन्दमय है और वीर्य... **अनन्त शक्ति द्वारा...** यह पर्याय की शक्ति की बात चलती है। लो! कौन कहता है? शक्ति। शक्ति कौन कहता था? वह देवीलालजी!

मुमुक्षु : पर्याय...

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय शक्ति की बात चलती है। **अनन्त शक्ति द्वारा...** अपने वीर्य की अनन्त शक्ति प्रगट हुई है, उससे **अब किसी भी निमित्त से अवस्था पलटती नहीं है।** तो क्या पहले निमित्त से अवस्था पलटती थी? निमित्त के लक्ष्य में अपनी अवस्था विपरीत और अपूर्ण होती थी, (अब) पूर्ण ज्ञान, दर्शन आनन्द की (पर्याय) प्रगट हो गयी, वीर्य के सामर्थ्य से पूर्ण रचना में विघ्न नहीं होता। इतनी अनन्त शक्ति पर्याय में प्रगट हुई। अनन्त बल की–अनन्त वीर्य की। समझ में आया?

ऐसे अनन्त चतुष्टयरूप जीव का निज स्वभाव प्रकट होता है... अपना शक्तिस्वभावरूप स्वभाव था, वह निजभावना... निजभावना और जिनभावना करने से वह प्रगट होता है। **इसलिए जीव के स्वरूप का...** इसलिए जीव के स्वरूप का **ऐसा परमार्थ से श्रद्धान करना...** लो। देखो! ऐसा आया। वह भगवान को ऐसा प्रगट हुआ है, परन्तु वैसा (ही) स्वरूप तेरा है, ऐसा श्रद्धान करना। **इसलिए जीव के स्वरूप का ऐसा परमार्थ से श्रद्धान करना वह ही सम्यग्दर्शन है।** कहो, यह पुरुषार्थ आया या नहीं? बाबूभाई! कहो, क्या करें? लोग विवाद करते हैं। भगवान! परन्तु विवाद टालने के काल में और विवाद कहाँ खड़ा किया? अवसर सब आ गया है। पुरुषार्थ करने का सब अवसर आ गया है। कोई (स्वभाव से) कमी है नहीं और दशा में उल्टा–उल्टा चलता है। भगवान! वो उल्टी (श्रद्धा) में तो चोरासी गति मिलेगी। उससे तो कोई परिभ्रमण टलेगा नहीं।

पण्डित जयचन्द इसमें से आचार्य महाराज का भाव निकालकर कहते हैं कि ऐसा चतुष्टयस्वरूप प्रगट हुआ तो मेरा भी ऐसा चतुष्टयस्वरूप स्वभाव है।—ऐसा अन्तर्मुख होकर निमित्त की श्रद्धा छोड़ दे, राग की (श्रद्धा) छोड़ दे, अल्पज्ञदशा प्रगट है, उसकी श्रद्धा दोड़ दे। निमित्त की रुचि छोड़ दे, राग–व्यवहार की (ऐसी) रुचि छोड़ दे कि उससे मेरा कल्याण होगा और अल्प ज्ञान, अल्प दर्शन, अल्प वीर्य और विपरीत

भाव जो वर्तमान में है (उसकी) रुचि छोड़ दे। अनन्त चतुष्टय सम्पन्न जीवस्वभाव उसकी दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है, केवलज्ञान होता है। कहो, समझ में आया? बहुत मोटी बात! परन्तु इसमें कहीं धीरे चलने का कहीं होगा या नहीं? धीरे-धीरे चलने का (मार्ग) है या नहीं? 'हळवे-हळवे' को क्या कहते हैं तुम्हारे? धीरे-धीरे। धीरे-धीरे कोई चलने की चीज़ है या नहीं? ये धीरे-धीरे की बात करते हैं न? सम्यग्दर्शन धीमे की बात है। बाद में उग्र चारित्र और उससे उग्र शुक्लध्यान है, उसका फल केवलज्ञान है।

आगे जिसके अनन्त चतुष्टय प्रकट होते है, उसको परमात्मा कहते हैं... देखो! अब व्याख्या करते हैं। परमात्मा के नाम से जो गड़बड़ चली है, तो परमात्मा को कितने नाम से कहने में आता है, वह परमात्मा के नाम कहने में आते है। **उसके अनेक नाम हैं, उनमें से कुछ प्रकट कर कहते हैं।** भगवान को अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द और वीर्य प्रगट हुआ, उस परमात्मा को अनेक नाम से कहने में आता है। तब उनको लागू पड़ते हैं। उसमें सब... 'लागू' को क्या कहते हैं? लागू पड़ते हैं। १५१।

णाणी सिव परमेट्ठी सव्वण्हू विण्हू चउमुहो बुद्धो।
अप्पो वि य परमप्पो कम्मविमुक्को य होइ फुडं॥१५१॥

ऐसा अनन्त चतुष्टय जिसको प्रगट हुआ, शक्ति में था (और) पर्याय में प्रगट हुआ। शक्तिवान को स्वीकारा, शक्ति की स्वीकारता हुई और प्रगट हुई, वह पर्याय भी अन्तर की ताकत से प्रगट हुई। वर्तमान पर्याय में इतनी (शक्तिवान) पर्याय (है, वह) पहले प्रगट नहीं थी। द्रव्य शक्तिवान, उसका गुण-शक्ति है (और) अल्प पर्याय थी, वह शक्तिवान की प्रतीति करने से, अन्तर में एकाग्रता करने से अनन्त चतुष्टय प्रगट हुआ, उसको परमात्मा कहते हैं। बाकी कोई दुनिया परमात्मा का नाम लेकर गड़बड़ करती है, ऐसे परमात्मा हैं नहीं। तो ऐसा है... **परमात्मा ज्ञानी है...** विस्तार करेंगे सब। ये परमात्मा को तीन काल का ज्ञान करनेवाला ज्ञानी कहिये। परमात्मा **शिव है...** शिव... ये परमात्मा को शिव कहिये। दूसरे शंकर-फंकर को कहते हैं, वो शिव है नहीं। **परमेष्ठी...** कहिये। परम इष्ट में रहे हुए... अपनी पूर्ण दशा। अब कहेंगे बात।

सर्वज्ञ है... सर्वज्ञ वह है कि ऐसी शक्ति में से जिनभावना करके वीतरागी पर्याय में सर्वज्ञपद प्रगट हुआ, उसको सर्वज्ञ कहने में आता है। **विष्णु है...** उसको विष्णु कहते हैं। अनन्त चतुष्टय प्रगट हुआ, उसको विष्णु कहते हैं। कोई जगत का बनानेवाला या संहार करनेवाला या रक्षण करनेवाला, ऐसा ब्रह्मा-विष्णु-महेश कोई है ही नहीं। तीन काल-तीन लोक में है ही नहीं। यहाँ 'शुद्ध' रुपक लेकर बात उत्पाद-व्यय-ध्रुव की है। भगवान आत्मा... ऐसा अनन्त चतुष्टय प्रगट हो वो विष्णु है। **चतुर्मुख...** ब्रह्मा, लो। उसको ब्रह्मा कहना। 'चतुर्मुख' का स्पष्टीकरण करेंगे। उसको **बुद्ध** कहना। सर्वज्ञ उसका नाम बुद्ध है। **आत्मा** कहना। आत्मा... '**वि य परमप्पो...**' आत्मा, और परमात्मा, ऐसा लेना। और कोई ऐसा कहे, आत्मा वह परमात्मा हो सकता है। परन्तु इसके नाम हैं न यह तो अर्थात् (जिसे) आत्मा कहिये, उसे परमात्मा कहने में आता है। कर्म से रहित है; इसलिए विमुक्त कहिये। कहो, कर्मविमुक्त है न? **यह स्पष्ट जानो**। यह परमात्मा कर्म से रहित है। पहले कर्म का सम्बन्ध था। था, वह जिनभावना करके नाश किया। उसको परमात्मा आदि नाम से कहने में आता है।

भावार्थ - **'ज्ञानी' कहने से सांख्यमति ज्ञानरहित उदासीन चैतन्यमात्र मानता है।** चैत्य शब्द है न? हाँ, मात्र। चैतन्यमात्र मानता है। उसे ज्ञान-दर्शन की पर्याय (सहित) नहीं मानता, परन्तु चेतन तो मानता है। **ज्ञानरहित उदासीन चैतन्यमात्र...** ऐसा। ज्ञानरहित अर्थात् जानपने की क्रिया (रहित)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह बराबर है। चैतन्यसहित मानता है। चैतन्यसहित (अर्थात्) अकेला चैतन्य। 'ज्ञानरहित' का अर्थ क्या? ज्ञान की जानने की क्रियारहित। **उदासीन चैतन्यमात्र...** चैतन्यसहित मानता है। यह तो चैतन्य है, ऐसा मानता है। उसमें कोई जानपने की क्रिया या दर्शन की क्रिया है (ऐसा) वे मानते नहीं। **उसका निषेध है।** उसका निषेध करने में आया।

और **शिव है।** भगवान आत्मा शिव है। वह 'णमोत्थुणं' में आता है। 'णमोत्थुणं' नहीं तुम्हारे। 'सिव-मलय-मरु-मणंत...' णमोत्थुणं है। हाँ, उसमें शिव आता है न?

यह शिव अर्थात् वह शंकर नहीं। यह शंकर भगवान शंकर है... जिसको द्रव्य था अनादि का, शक्ति थी अनादि की (और) जिन भावना की नयी और जिनभावना से नया अनन्त केवलज्ञान प्रगट किया, उसको शिव कहने में आता है। अनादि का ही शिव कहते हैं ऐसा कोई शिव-फिव है नहीं। समझ में आया? **सब कल्याणों से परिपूर्ण है।** देखो! **सब कल्याणों से परिपूर्ण है...** जैसा सांख्यमति, नैयायिक, वैशेषिक मानते हैं वैसा नहीं। सांख्यमति आदि परिपूर्ण मानते नहीं। आहा! नहीं, उसकी बात अलग है। यह तो पूर्ण केवलज्ञान, पूर्ण दर्शन, आनन्द उसका नाम शिव है। वे लोग मानते नहीं।

और **परमेष्ठी है।** अनन्त चतुष्टयसम्पन्न भगवान को परमेष्ठी कहने में आता है। **परम (उत्कृष्ट) पद में स्थित है।** एक यह अर्थ। परम उत्कृष्ट अपनी निर्मलदशा में टिक रहा है, उस अपेक्षा से भगवान को परमेष्ठी कहने में आता है। ऐसा स्वरूप अन्य में होता नहीं। **अथवा उत्कृष्ट इष्टत्व स्वभाव है...** उत्कृष्ट इष्ट... इष्ट... इष्टत्व। इष्टत्व... इष्टत्व... प्रिय... अपना उत्कृष्ट इष्टत्व स्वभाव है। **जैसे अन्यमति कहीं अपना इष्ट कुछ मानकर के उसको परमेष्ठी कहते हैं।** परन्तु उसमें इष्टत्व लागू पड़ता नहीं। कैसे नहीं? इष्टत्व तो वो इष्टत्व है (कि जो) अन्य अनिष्टत्व का नाश करके इष्टत्व प्रगट हुआ... प्रगट हुआ। अज्ञान, राग-द्वेष अनिष्ट हैं... केवलज्ञान आदि इष्ट प्रगट हुआ, उसको ही परमेश्वर कहने में आता है। परमेष्ठी कहने में आता है ऐसा।

और **सर्वज्ञ है...** सर्व लोकालोक को जाने। एक समय में भगवान तीन काल-तीन लोक को जाने, वे ही सर्वज्ञ हैं, दूसरा कोई सर्वज्ञ है नहीं। त्रिकाल सर्वज्ञ कोई है और उसने जगत बनाया। बनाया तो तीन काल का ज्ञान कहाँ रहा? बनाया, पीछे वर्तमान और भविष्य दो काल का ज्ञान हुआ। भूत काल में था उसका तो ज्ञान रहा नहीं। सर्वज्ञ... त्रिकाल जैसी निज और परवस्तु भूत-वर्तमान-भविष्य (रूप) है, सबको एक समय में जानते हैं तो ही सर्वज्ञ है, दूसरा कोई सर्वज्ञ है नहीं। समझे? **अन्य कितने ही किसी एक प्रकरण सम्बन्धी सब बात जानता है, उसको भी सर्वज्ञ कहते हैं (ऐसा है नहीं)।** कोई चलते अधिकार में पूर्ण हो, वर्तमान क्षेत्र-काल की बात में पूर्ण हो, उसको सर्वज्ञ कहते हैं।—ये सर्वज्ञ नहीं। एक है न वर्धा में? हाँ, वो। वो कहे कि 'वर्तमान में जो सबसे अधिक जाननेवाला है, वह सर्वज्ञ है। एक समय में तीन काल-तीन लोक

जानता है, ऐसा सर्वज्ञ नहीं।' ये शंका से भ्रष्ट हुआ। चला गया आगे से आगे। कहीं का कहीं चला गया। नहीं तो दिगम्बर जैन था। उसमें से भ्रष्ट होकर कहाँ स्थापित कर दिया। इसमें कोई है या नहीं उदयपुर का? चन्द्रसेनजी! तुम्हारे है या नहीं कोई वहाँ? कोई है? सबको मानते हैं। वह भी तुम्हारे... वह झूठ ही झूठ, गप्प ही गप्प। नास्तिक बड़ा।

यहाँ तो कहते हैं, सर्वज्ञ वर्तमान प्रकरण... कोई एक प्रकरण अर्थात् कोई एक बात चलती (हो), उसमें पूर्ण हो, उसको सर्वज्ञ कहते हैं। अथवा कोई (इससे) आगे बात करके वर्तमान में जितना विज्ञान में विशेष-अधिक (जानकार) हो, उसका नाम सर्वज्ञ है।—ऐसा सर्वज्ञ होता ही नहीं। वर्तमान में कहाँ से जाने? एक द्रव्य की अनन्त पर्यायें और अनन्त पर्याय में (हर) एक पर्याय के अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद। उसे भी वह तो जान सकता नहीं। वर्तमान में भी पूर्ण हो सकता नहीं। वह सर्वज्ञ उसको कहते हैं। सर्वज्ञ, तीन काल-तीन लोक को हस्तामलवत् एक समय में जाने उसको सर्वज्ञ (कहते हैं)। ओहो! धर्म का मूल तो सर्वज्ञ हैं। तो सर्वज्ञ में जहाँ गड़बड़ उठी, (तो) धर्म में गड़बड़ हुए बिना रहती नहीं।

और **'विष्णु' है... जिसके ज्ञान सब ज्ञेयों में व्यापक हैं...** विष्णु क्यों कहते हैं? अपना ज्ञान लोकालोक जानता है, उस अपेक्षा से व्यापक है। ज्ञान में लोकालोक जानने में आता है, उस अपेक्षा से व्यापक है। **अन्यमति वेदान्ती कहते हैं कि सब पदार्थों में आप है...** अथवा सर्व पदार्थ में व्यापता है **तो ऐसा है नहीं**। एक (जीव) सर्व पदार्थ में (व्यापता) है, ऐसा भी नहीं और ज्ञान सर्व पदार्थ में... एक (ज्ञान) सर्व पदार्थ में व्याप जाता है, ऐसा भी नहीं। कहो, समझे?

'चतुर्मुख' कहने से केवली अरहन्त के समवसरण में चार मुख चारों दिशाओं में दिखते हैं... देखो! ब्रह्मा के चार मुख (है, ऐसा) कहते हैं वे लोग? भाई! वह ब्रह्मा नहीं। भगवान सर्वज्ञ परमात्मा समवसरण में विराजते हैं, चार मुख दिखते हैं। मुख तो एक है। परन्तु स्फटिक जैसा शरीर है न? स्फटिक जैसा शरीर हो गया है (तो) चार मुख दिखते हैं, चारों ओर। सबको ऐसा दिखता है कि हमारे सामने हैं भगवान, हमारे

सामने। '**चतुर्मुख**' **कहने से केवली अरहन्त के समवसरण में चार मुख चारों दिशाओं में दिखते हैं, ऐसा अतिशय है, इसलिए चतुर्मुख कहते हैं।** इसलिए आपको चतुर्मुख कहने में आता है। **अन्यमति ब्रह्मा को चतुर्मुख कहते हैं।** (वह) झूठ है। कोई ब्रह्मा ऐसा (है नहीं)। ये भगवान ही ब्रह्मा हैं। यह भगवान ही ब्रह्मा है। तीन काल-तीन लोक को (जानते हैं), चार मुख दिखते हैं और चार अनुयोग उनके मुख में से निकला (तो) वे ही ब्रह्मा हैं, दूसरा कोई ब्रह्मा है नहीं। ऐसे सर्वज्ञ की प्रतीति करके अपने स्वभाव की श्रद्धा करना, वह सम्यग्दर्शन है। वह बात बताने को यह बात कहते हैं। भावशुद्धि प्रगट करने को।

और '**बुद्ध**' **है...** कैसा है भगवान आत्मा? जो (पर्याय में) प्रगट हुआ वह। **सबका ज्ञाता है...** बुद्ध अर्थात् ज्ञाता। सबको—तीन काल-तीन लोक को—जाननेवाला है। **बौद्धमति क्षणिक को बुद्ध कहते हैं...** बौद्धमति एक-एक समय की अवस्था जाननेवाले को बुद्ध कहते हैं, (पर) **वैसा है नहीं।**

और '**आत्मा**' **है...** सर्वज्ञ को आत्मा कहते हैं। अपने स्वभाव में ही निरन्तर प्रवर्तता है... '**अतति गच्छति इति आत्मा।**' आत्मा का अर्थ '**अतति गच्छति इति आत्मा।**' अपने पूर्ण स्वभाव में प्रवर्ते, उसका नाम आत्मा है। तो पूर्ण स्वभाव में प्रवर्ते तो भगवान ही प्रवर्ते, दूसरा कोई प्रवर्त सकता नहीं। उसका नाम आत्मा कहते हैं। लो, पूर्ण आत्मा उसे कहते हैं, ऐसा कहते हैं। दूसरा पूर्ण आत्मा कहाँ? कार्यपरमात्मा हुआ, उसको ही पूर्ण आत्मा कहते हैं। पूर्णदशा, वह आत्मा। यह ऊपर विशेषण किया न, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी इत्यादि को आत्मा कहिये। ऐसे आत्मा-आत्मा साधारण अल्प पर्याय में है, परन्तु आतमा की पूर्ण दशा-दिव्यशक्ति प्रगट हुई, उसको ही आत्मा कहने में आता है। **अन्यमति वेदान्ती सब में प्रवर्तते हुए आत्मा को मानते हैं वैसा नहीं।** 'वेदान्ती' बीच में शब्द पड़ा है। **सब में प्रवर्तते हुए...** (अर्थात् सर्व) व्यापक ऐसा मानता है। **प्रवर्तते हुए आत्मा को मानते हैं...** ऐसा नहीं है। उसमें व्याप्त है, ऐसा नहीं है।

और '**परमात्मा**' **है।** भगवान को ही परमात्मा कहते हैं। **आत्मा का पूर्ण रूप** '**अनन्त चतुष्टय**' **उसके प्रगट हो गये हैं...** आत्मा का पूर्ण स्वरूप चार चतुष्टय पर्याय में

प्रगट हुए, लो। प्रगट पर्याय मानी, गुण माना, द्रव्य माना। तो पर्याय किसने मानी? वेदान्त-फेदान्त में पर्याय तो है नहीं। दूसरे में भी कहाँ एक समय में उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य है? जैन परमेश्वर के अतिरिक्त तीन काल में ऐसे एक समय में तीन अंश कभी किसी के माने नहीं।

भगवान को कहते हैं न स्वयंभूस्तोत्र में? कौन? समन्तभद्र आचार्य। भगवान! आपका सर्वज्ञपना ऐसे हमने निश्चित किया कि काल का समय एक और द्रव्य के अंश तीन। एक समय में तीनों अंश आपने देखे तो आप ही सर्वज्ञ हो। छोटे में छोटा काल और उसमें जाने तीन (अंश)। ज्ञान की विकासशक्ति पूर्ण हुए बिना ऐसा एक समय में तीन अंश साथ में जानना (सम्भव नहीं)। समय एक, जानना तीनों अंश। देवीलालजी! ऐसे भगवान आप ही हैं, सर्वज्ञ आप ही हैं—ऐसा हमने निर्णय किया है। दूसरा कोई सर्वज्ञ हो सकता नहीं। समझ में आया?

आत्मा का पूर्ण रूप 'अनन्त चतुष्टय' उसके प्रगट हो गये हैं, इसलिए परमात्मा है। कर्म जो आत्मा के स्वभाव के घातक घातियाकर्मों से रहित हो गये हैं... अन्तिम शब्द-आखिर का शब्द। **कर्मविमुक्त...**' अर्थात् पहले कर्म था, ऐसा बताना है। पहले-अनादि से बिल्कुल शिव (मुक्त) था—यह बात नहीं है। कर्म का पहले सम्बन्ध था, अब स्वभाव के सम्बन्ध की एकाग्र भावना करके कर्म से विमुक्त हो गये। उसको हम परमात्मा, सर्वज्ञ, सिद्ध, अरिहन्त कहते हैं। **अथवा कुछ करनेयोग्य कार्य न रहा...** 'कर्मविमुक्त' का दूसरा अर्थ किया। कर्म अर्थात् कार्य। भगवान को कुछ कार्य करना बाकी नहीं, पूर्ण कृतकृत्य हो गये। चारित्र (मुनिदशा) में तो अभी थोड़ी स्थिरता करके केवलज्ञान (लेना) बाकी है। भगवान को तो कुछ कार्य करना नहीं रहा। कर्म से विमुक्त हैं—सब कार्य से विमुक्त हैं। पूर्ण कार्य नया (प्रगट करना) हों। समय-समय की परिणति होती है वह तो... **कुछ करनेयोग्य कार्य न रहा, इसलिए भी...** भगवान **कर्मविमुक्त है। सांख्यमति, नैयायिक सदा ही कर्मरहित मानते हैं, वैसे नहीं है।** देखो! सांख्यमति आदि ऐसा कहते हैं कि अनादि से आत्मा कर्मरहित ही है, शिव ही है। शिव को कुछ कर्म है नहीं। वह बात झूठ है। अनादि से कर्म का सम्बन्ध था, स्वभाव के

सम्बन्ध की भावना करने से छूट गया, उस अपेक्षा से भगवान को कर्मरहित कहने में आता है।

सदा ही कर्मरहित मानते हैं वैसे नहीं है। ऐसे परमात्मा के सार्थक नाम हैं। सर्वज्ञ परमात्मा के सार्थक (अर्थात्) जिसमें अर्थ सिद्ध होता है, ऐसे नाम हैं। अन्यमति **अपने इष्ट का नाम एक ही कहते हैं...** लो, अन्यमति अपने इष्ट का एक ही नाम कहते हैं। बस, शिव, या शंकर, या विष्णु, या ब्रह्मा। एक ही नाम लो। यहाँ तो गुणसम्पन्न हो अनेक नाम (रूप) उपमा सिद्ध हो सकती है। **उनका सर्वथा एकान्त के अभिप्राय के द्वारा अर्थ बिगडता है, इसलिए यथार्थ नहीं है।** सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ जैन परमेश्वर के अतिरिक्त कोई परमेश्वर है ही नहीं और (अन्य को) परमेश्वर का नाम देते हैं, वह उसको लागू नहीं पड़ता। **अरहन्त के ये नाम नयविवक्षा से सत्यार्थ हैं...** लो। अरिहन्त भगवान... विशेष तो अरिहन्त भगवान की व्याख्या की है। कारण कि उन्हें वाणी निकालनी (स्थापित करनी) है न? शरीरसहित वाणी है, परमात्मा हुए तो लोगों को परमात्मा (होने) का बोध दिया—ऐसी अरिहन्त की व्याख्या आती है। अरिहन्त उसको कहते हैं। समझ में आया? **ऐसा जानो।** अरिहन्त उसको कहते हैं। बहुत गुणों का वर्णन किया। वस्तु थी, उसमें शक्तियाँ हैं, उसकी जिनभावना की... जिनभावना अर्थात् सम्यग्दर्शन—रागरहित दृष्टि। राग से भिन्न पड़कर दृष्टि करके स्वभाव में एकाग्र हुआ, केवलज्ञान प्रगट हुआ, उसको सब नाम लागू होता है। दूसरे को लागू होता नहीं।

आगे आचार्य कहते हैं कि ऐसा देव मुझे उत्तम बोधि देवें। लो। कुन्दकुन्दाचार्य जैसे भी भावना करता था। आहाहा! इन्हें-भगवान ने अनंत चतुष्ट प्रगट किया है न? अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य। हे भगवान! आपको हुआ है, मुझे दो। और यह क्या? समझ में आता है? कुन्दकुन्दाचार्य महाराज कहते हैं कि किसी के पास से कुछ मिलता नहीं, निमित्त से मिलता नहीं, पर्याय में से नयी पर्याय होती नहीं, राग से सम्यक् की नयी पर्याय होती नहीं। यहाँ कहते हैं, प्रभु! ऐसा अनन्त चतुष्टय आपको प्रगट हुआ है, तो हमको दो। यह अपने अनन्त चतुष्टय की एकाग्रता की भावना है। समझ में आया? हे नाथ! आपकी हम विकल्प से भक्ति कर रहे हैं, तो हमारे

विकल्प में अशुभ विकल्प न आवे और अल्प काल में वह (शुभ) विकल्प टूटकर हमें अनन्त चतुष्टय प्रगट हो—ऐसी प्रार्थना करते हैं। कोलकरार करते हैं कि हम केवलज्ञान लेंगे एक-दो भव में। दूसरा कुछ अन्तर नहीं, ऐसा कहते हैं। भगवान हमको दो ऐसा कहते हैं। भगवान ने देखा है, ऐसी हमारी प्रतीति तो हमको हो गयी है, चारित्र भी है, पूर्ण नहीं है तो होगा ही। एकाध भव में पूर्ण होगा ही। हम भी अरहन्त होंगे। तो अरिहन्त ने हमको दिया, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है।

लो, कुन्दकुन्दाचार्य माँग करते हैं! (कोई) चीज़ किसी के पास से मिलती नहीं, द्रव्य के अतिरिक्त मिलती नहीं (और) पर्याय में से पर्याय प्रगट होती नहीं। देखो, मणिलालभाई! यह और कहाँ से निकाला? देउ मम् उत्तम बोहि... हे भगवान! आप देव हो। और देव उसको कहिये कि कुछ देते हैं तो देव कहिये। वो पहले आ गया है। पहले आ गया है न? भगवान तो लक्ष्मी आये, भोग आये, पुण्य आये और मोक्ष आये। चार तो देते हैं। धन्नालालजी! पहले वह गाथा आ गयी है। भगवान का अर्थ? भगवान ने जो कहा, उसका जो ज्ञान करते हैं, श्रद्धा-ज्ञान करते हैं, उसको मोक्ष भी होता है, राग आता है तो पुण्य भी होता है, पुण्य में से विषयभोग भी मिलते हैं और पुण्य से लक्ष्मी भी मिलती है। तो चार को देनेवाले आप ही हो, ऐसा हम मानते हैं। पहले ऐसे कहा था। अब तो यहाँ कहते हैं कि प्रभु! हमें अनन्त चतुष्टय हो। वो चार—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नहीं। हमारे तो अकेले मोक्ष देना, ऐसी प्रार्थना विनय से करते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन - 2

भावपाहुड़, गाथा - 152, 153, 154

वीर संवत् 2487, श्रावण शुक्ल 6, गुरुवार, दिनांक-17-08-1961

अष्टप्राभृत है, उसमें भावप्राभृत का अधिकार चलता है। 'भाव' का अर्थ यहाँ शुद्धभाव मुख्य लिया है। आत्मा में सच्चा सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र, सच्चा कहते यथार्थ-निश्चय, ऐसी जो अवस्था आत्मा में त्रिकाली चैतन्यस्वभाव के आश्रय से होती है, उसको यहाँ शुद्धभाव कहने में आया है। उसकी प्रधानता है। आचार्य महाराज प्रार्थना करते हैं। प्रभु की पहिचान करके परमात्मा के द्रव्य-गुण-पर्याय, उसका बोध बराबर अन्तर में हुआ है, ऐसे भानसहित अपनी प्रार्थना करते हैं। प्रभु! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पूर्ण प्राप्ति हमको दो। हमें दूसरी कोई इच्छा है नहीं। परमात्मा! आप तो महान-गुण से अधिक हो, हमको बोधि दो। बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र— तीन की एकता की प्रार्थना करते हैं।

इय घाइकम्ममुक्को अट्ठारहदोसवज्जिओ सयलो।
तिहुवणभवणपदीवो देउ ममं उत्तमं बोहिं॥१५२॥

'इय' (अर्थात्) **इस प्रकार घातिया कर्मों से रहित...** भगवान चार घातिकर्म से रहित हुए हैं। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय—ऐसे कर्म का नाश अपनी जिनभावना—वीतरागभावना द्वारा किया है। और **क्षुधा-तृषा आदि...** वह कर्म की बात की कि अन्तर्मुख पर्याय में क्या दोष गया? क्षुधा भगवान को है नहीं। सर्वज्ञ को क्षुधा लगती नहीं। तृषा नहीं, रोग नहीं। इत्यादि अठारह दोषरहित हैं, वह **अठारह दोषों से रहित...** भगवान का आत्मा अठारह दोषरहित हो गया है। चार घातिकर्म का नाश हुआ, अठारह दोषरहित हुए। सकल (अर्थात्) शरीरसहित। सकल—'कल' अर्थात् शरीर, 'स' अर्थात् सहित। भगवान को शरीरसहित (कहना यह) अरिहन्त की व्याख्या करते हैं। अरिहन्त तो उपदेश देते हैं न? तो उनकी प्रार्थना (करते हुए) उनकी बात करते हैं। हे भगवान! आप शरीरसहित हो **और तीन भवनरूपी भवन को...** तीन

भवन—तीन लोकरूपी भवन अर्थात् जगत उसको **प्रकाशित करने के लिये प्रकृष्ट दीपक...** प्रकृष्ट अर्थात् खास, उत्कृष्ट में उत्कृष्ट दीपक समान आप **देव हैं।** चौदह ब्रह्माण्ड—तीन लोक में प्रकाश करनेवाले, हे परमात्मा! आप दीपक—विशेष (अर्थात्) खास प्रकाशमय दीपक ऐसे आप देव हैं। तो **मुझे...** हे नाथ! परमात्मा! अन्तर भक्ति आत्मा की जगी है। अन्तर में ज्ञानानन्दस्वभाव, शुद्धस्वभाव पवित्र चिद्घन की भक्ति निश्चय से जागी है, तो व्यवहार से भगवान की भक्ति उसको स्फुरणा में आती है। समझ में आया?

भगवान आत्मा वीतरागविज्ञान सच्चिदानन्दघन उसके अनुभव में, उसकी भावना करने की अन्तर में भक्ति जागी है। तो भगवान को कहते हैं, प्रभु! हमको सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति हो। हमको बोधि हो। ऐसे माँगने से स्वर्ग की, इन्द्रपद की, तीर्थंकरपद की, सर्वार्थसिद्धि के पद की (माँग करता है)। प्रभु! हमारी तो एक ही भावना है। हमारे आत्मा में हमारी दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय की पूर्ण अभेदता हो जाये, वही हमारी प्रार्थना है। अन्तर्मुखी दृष्टि में वही विषय चलता है। **इस प्रकार आचार्य ने प्रार्थना की है।** कोई कहे, भगवान या कुन्दकुन्दाचार्य के पास से कुछ मिलता नहीं तीन काल में। अपनी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी सम्पदा अपने निज प्रभु-परमात्मा के अवलम्बन बिना कभी (भी) कहीं से मिलती नहीं। देवीलालजी! बराबर है? तो फिर महावीर...

और परमात्मा के पास से माँग करते हैं। वो भक्ति है। अब एक नया यहाँ... 'नवा' (को) क्या कहते हैं? नया। ये तो हमारी भाषा आ जाती है थोड़ी। 'सकल' विशेषण है। भगवान को 'सकल' विशेषण दिया। हे भगवान! आप शरीरसहित हैं। आपका हमको बहुत उपकार है। सिद्ध तो शरीर रहित हो गये। उनके पास शरीर भी नहीं, वाणी भी नहीं। आप शरीर सहित हैं। यह सकल... **मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति करने के जो उपदेश हैं, वह वचन के प्रवर्ते बिना... वचन के प्रवर्ते बिना नहीं होते हैं।** जगत के प्राणी में मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति उपदेश के वचन की प्रवृत्ति बिना होती नहीं। समझ में आया? सिद्ध के पास तो शरीर भी नहीं, वाणी भी नहीं। 'भगवान का शरीर'

वह व्यवहार से निमित्त से कथन है। (भगवान को) शरीर भी नहीं, राग भी नहीं। यहाँ तो संयोग सम्बन्ध, निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध में भगवान को शरीर है, (ऐसा कहा जाता है) और शरीर की प्रवृत्ति से वचन प्रवर्तते हैं, उसके बिना वचन की प्रवृत्ति होती नहीं।

वचन की प्रवृत्ति शरीर बिना नहीं होती है। उपदेश शरीर बिना न हो और वचन की प्रवृत्ति शरीर बिना न हो। **इसलिए अर्हंत का आयुकर्म के उदय से...** भगवान को आयुष्यकर्म के उदय से **शरीरसहित अवस्थान रहता है।** शरीर में थोड़ा—अल्प काल भी उसमें रहे। पूर्ण केवलज्ञान हो गया और एकदम—एक समय में (मोक्ष) हो जाये तो मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति कहनेवाला उपदेश तो रहा नहीं। कितने ही लोग कहते हैं अन्यमति कि पूर्णदशा हो जाये तो शरीर छूट जाय। पूर्णता—(सिद्ध) हो जाये तो शरीर रहता नहीं, वाणी रहती नहीं। अनन्त में अनन्त मिल जाते हैं—उसके विरुद्ध में कहा है, (क्योंकि) ऐसा है नहीं। सर्वज्ञ हुए, परमानन्द हुआ, अनन्त चतुष्टय प्रगट हुआ, तब जो शरीर न हो तो उपदेश की वाणी की प्रवृत्ति (न हो और) जगत को सुनने में मिले नहीं कि क्या मोक्षमार्ग है? क्या मोक्ष है? क्या आत्मा है? क्या छह द्रव्य है? वो तो पूर्ण हो गये (और) पूर्ण होकर मुक्ति हो गयी। परन्तु पूर्ण हुए पीछे कैसा जाना? किस प्रकार से जाना? मोक्षमार्ग कैसे होता है? ऐसा उसने कैसा अनुभव किया? और उसका फल कैसे मिला? वह वाणी बिना तो (उपदेश की) प्रवृत्ति होती नहीं। समझ में आया?

एक बार यह प्रश्न चला था वेदान्तवालों के। नहीं, पूर्ण (होता), फिर और शरीर कैसा और वाणी कैसी और अमुक कैसा? अरे भाई! तो फिर, मोक्षमार्ग क्या (है, ऐसा) मोक्ष की प्रवृत्ति का निमित्त (रूप उपदेश) वचन बिना किसने कहा? तुम्हारी कल्पना से मोक्षमार्ग मान लो, ऐसी चीज़ है नहीं। **अवस्थान रहता है...** कितनी बार तो... आयुष्य (कर्म) के कारण से शरीर सहित (होने से) वाणी निकलती है। **और सुस्वर आदि नामकर्म के उदय से वचन की प्रवृत्ति...** लो, ठीक। सुस्वर नामकर्म का भगवान को उदय है। नामकर्म की एक प्रकृति है। सर्वज्ञ हुए, अनन्त आनन्द हुआ, अनन्त बल

हुआ, अनन्त दर्शन हुआ, तथापि आयुष्यकर्म के निमित्त से शरीर है और सुस्वरकर्म के उदय से ध्वनि निकलती है। **नामकर्म के उदय से वचन की प्रवृत्ति...** सुस्वर... मेघध्वनि जैसे गाजती है, ऐसी दिव्यध्वनि निकलती है। ये निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध होता है। इतना सम्बन्ध भगवान सर्वज्ञ हुए तो भी रहा। वाणी, शरीर आदि बिना मोक्षमार्ग का निमित्त कौन है? ऐसा सम्बन्ध न समझे, न माने, उसको मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति होती नहीं। समझ में आया?

इस तरह अनेक जीवों का कल्याण करनेवाला उपदेश होता रहता है। भगवान सर्वज्ञ परमात्मा... समझ में आया? सर्वज्ञ परमात्मा... ... अन्तर में सर्वज्ञस्वभाव शक्तिरूप आत्मा में पड़ा है, (उसके) अन्तर्मुख सम्यग्दर्शन-ज्ञान जिनभावना से जिसने अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य प्रगट किया है। ऐसा पूर्ण स्वरूप प्राप्त करके जो उसमें शरीर का निमित्त न हो तो उपदेश की वाणी की प्रवृत्ति नहीं होती। तो उसने पूर्ण क्या जाना और पूर्ण का कैसा अनुभव हुआ, पूर्णानन्द की सच्चिदानन्द पूर्ण पर्याय-दशा कैसी प्राप्ति हुई—ऐसा (कहने की) प्रवृत्ति तो वाणी और शरीर बिना होती नहीं। कोई ऐसे कहे कि पूर्णता प्रगट (हो) जाये तब शरीर और वाणी की प्रवृत्ति नहीं रहती है, तो उसको मोक्षमार्ग सुनने का वचन का निमित्त भी (रहता) नहीं। (परन्तु) ऐसा है ही नहीं।

भगवान आत्मा सत्-शाश्वत् ज्ञान-आनन्द का पिण्ड प्रभु है। वह शाश्वत् ज्ञान-आनन्द उसकी अन्तर्दृष्टि जिनभावना रागरहित, विकल्परहित, पुण्यरहित, मनरहित, संगरहित चिदानन्दस्वभाव की एकाग्रता की भावना करते (हुए) केवलज्ञान हुआ। (फिर भी) पूर्व के आयुष्यकर्म के निमित्त से शरीर का सम्बन्ध भी रहा और नामकर्म के सम्बन्ध से सुस्वर की ध्वनि भी रही, तो जगत को उपदेश की प्रवृत्ति मिलती है। भगवान को इच्छा नही, कल्पना नहीं, विकल्प नहीं। पूर्णानन्द आत्मा की दशा प्रगट हो गयी, तो अन्तर स्वभाव में था, उस प्राप्त की प्राप्ति हो गयी। अन्तर में सर्वज्ञपद, पूर्ण आनन्द, पूर्ण वीर्य, पूर्ण दृष्टा-दर्शनशक्ति, जो अन्तर स्वभाव में पूर्णता थी, उसकी एकाग्रता-ध्यान आदि करने से प्राप्त की प्राप्ति हुई। था, वह प्रगट हुआ। परन्तु जो था

(और) प्रगट हुआ, वो चीज़ क्या है (उसका उपदेश)..., शरीर और वाणी का संयोग न हो तो दुनिया को उपदेश की प्रवृत्ति का निमित्त मिलता नहीं। तो अरिहन्त को शरीर भी है, वाणी भी है, (परन्तु) इच्छा नहीं, विकल्प नहीं, राग नहीं, वृत्ति का उत्थान नहीं। वाणी का सहज निकलना... ओम ध्वनि निकलती है तो जगत के प्राणी उसकी योग्यता के प्रमाण से समझ लेते हैं। तो कहते हैं कि भगवान! अनेक जीवों का कल्याण करनेवाला उपदेश मुख से निकलता है।

कितने (ही) **ऐसा अवस्थान परमात्मा के सम्भव नहीं है...** ऐसा मानते हैं। कितने ऐसा मानते हैं कि ऐसा होता नहीं, पूर्ण हो जाये तो। अरे! वस्तु का स्वरूप... शुद्ध का अन्तर अनुभव हुआ तब तक राग आदि रहता है। राग आदि न रहे तो पूर्ण प्राप्ति करने का प्रयत्न कहाँ से करे? पहले आत्मा का भान हुआ (कि) मैं सच्चिदानन्द शुद्ध ज्ञाता-दृष्टा हूँ। मेरा स्वभाव ही अनादि-अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्दकन्द है। ऐसा भान करते (हुए) भी अस्थिरता का राग-द्वेष रह जाता है। पश्चात् स्वरूप की स्थिरता की जमवट में वो राग-द्वेष खिर जाता है। वीतरागविज्ञानघन दशा प्रगट होती है। तो कोई कहते हैं कि परमात्मा हुए तो उसको शरीर-वाणी की प्रवृत्ति होती नहीं। तो वह बात सच्ची नहीं। वह (शरीर-वाणी) नहीं तो उपदेश की प्रवृत्ति देना (सम्भव नहीं)। लोगों को धरम का मार्ग कैसे सुनने में आये?

तब मोक्षमार्ग का उपदेश भी नहीं बनता है, इस प्रकार जानना चाहिए। समझ में आया? डॉक्टर! क्या कहते हैं? चार-पाँच बात सिद्ध की। एक तो, आत्मा वस्तु है, उसमें जो पूर्ण ज्ञान-आनन्द आदि दशा प्रगट हुई, वो सत्ता में थी, शक्ति में थी, स्वभाव-सामर्थ्य में थी और एकाग्रता साधन द्वारा वह प्रगट की। उसको आयुष्यकर्म के कारण से अभी शरीर भी रहता है और सुस्वर नामकर्म की प्रकृति के कारण से ध्वनि-आवाज भी रहती हैं। इच्छा नहीं, विकल्प नहीं। निर्विकल्प आनन्द के अनुभव में एकरूप पिण्ड हो गया है। समझ में आया? जो शरीर औन वाणी न हो तो उपदेश की प्रवृत्ति... जाती है अर्थात् उपदेश की प्रवृत्ति होती नहीं। जो वाणी और शरीर न हो, तो जगत को सत्य मार्ग (कि) जो पूर्ण सर्वज्ञ ने देखा, वो तो सुनने में आता नहीं। बराबर है?

श्रीमद् में आता है न? कि 'जो पद श्री सर्वज्ञे देखा ज्ञान में... जो पद श्री सर्वज्ञे देखा ज्ञान में, कही शक्या नहीं ते पण श्री भगवान जो।' पूर्ण रूप तो वाणी में कैसे आवे? वाणी को शरीर की प्रवृत्ति उसके योग से वो वाणी निकलती है। समझ में आया? 'ते स्वरूपने अन्य वाणी ते शुं कहे? अनुभवगोचरमात्र रहा वह ज्ञान जो... अनुभवगोचरमात्र रह्युं ते ज्ञान जो। अपूर्व अवसर ऐसा किसदिन आयेगा?' सर्वज्ञपद हो और उस समय वाणी निकले, ऐसा अवसर प्रभु! हमारे कब आयेगा? यह तो एक अन्दर की भावना की झंकार है। समझ में आया? सर्वज्ञ परमात्मा... पूर्णानन्द स्वभाव की प्राप्ति, अनुभव हुआ और उनकी वाणी में आया। परन्तु वह तो पूर्ण चीज़ है, वचनातीत है, देहातीत है, विकल्पातीत है, मन के संगरहित है—ऐसी चीज़ की पूर्ण दशा हुई। पूर्ण (वस्तु) तो कहने में नहीं आती। परन्तु उसके योग से ऐसा जो उपदेश न प्रवर्ते तो जगत को मार्ग मिलता नहीं। निमित्तरूप से मार्ग नहीं मिलता।

शरीर और वाणी भगवान अरिहन्त को होती है। देह छूट जाय... अरिहन्त का अर्थ जीवनमुक्त। अन्तर में पूर्ण दशा प्रगट हुई तो भी शरीर का आयुष्य अभी विद्यमान है और 'सिद्ध' का अर्थ विदेहमुक्त (अर्थात्) शरीर और वाणी से मुक्त हो गये, अकेला आत्मा (रहा), पूर्णानन्द की प्राप्ति हुई। ऐसे सिद्ध भगवान 'णमो सिद्धाणं' ये दूसरा पद है पंच नवकार में। उसको विदेहमुक्त कहते हैं। 'णमो अरिहंताणं' वो विदेहमुक्त नहीं, परन्तु जीवनमुक्त है। पूर्ण दशा प्राप्त हुई, परन्तु आयुष्य बाकी है, उसमें वो वाणी, शरीर का सम्बन्ध (होने से उपदेश) सहज इच्छा बिना निकलता है। भगवान के पास प्रार्थना करते हैं। ये प्रार्थना (करने से) कोई देता नहीं कहीं से। उनको विकल्प उठा है, पूर्णानन्द की अन्दर प्रतीति, रमणता है और पूर्णता (प्रगट) करने की अपनी भावना है, तो भगवान को कहते हैं, प्रभु! हमको हमारी पूर्ण दशा की प्राप्ति हो, ऐसी हमारी भावना है। दूसरी कोई हमारी भावना है नहीं। भक्तों को विकल्प आता है तो ऐसा कथन निकलता है। कोई दे देता नहीं। बाहर से आ जाता नहीं। अपने पुरुषार्थ से अन्तर की प्राप्ति होती है। कोई (बाह्य) कारण से तीन काल में होती नहीं। १५२ (गाथा) हुई। १५३ गाथा।

आगे कहते हैं कि जो ऐसे अरहन्त... अरहन्त जिनेश्वर के चरणों में नमस्कार

करते हैं... जिनको आत्मा पूर्ण वीतराग अकषाय विज्ञानघन आनन्द की प्राप्ति हुई उनको जिनेश्वर कहने में आता है। **जो ऐसे अरहन्त जिनेश्वर के चरणों में नमस्कार करते हैं, वे संसार की जन्मरूप बेल को काटते हैं।** वे संसार की जन्मरूप बेल को नाश कर डालते हैं।

जिणवरचरणंबुरुहं णमंति जे परमभक्तिराएण।
ते जम्मवेल्लिमूल्लं खणंति वरभावसत्थेण॥१५३॥

आहाहा! देखो यहाँ भगवन्त... ये परमात्मा की बाहर की भक्ति तो विकल्प है, परन्तु अन्तर की निर्विकल्प भक्ति आत्मा में जगी है और पूर्ण दशा है नहीं, तो पूर्ण परमात्मा के चरणकमल में नमन करने की भावना आये बिना रहती नहीं। वह राग मिट जाये, पूर्णानन्द हो जाये, तो फिर कुछ रहता नहीं। बाद में कोई वंद्य-वन्दक(भाव) रहता नहीं कि वन्दन करनेवाला मैं और ये वन्दन करनेयोग्य—(ऐसा) प्राप्त पूर्ण दशा में रहता नहीं।

अर्थ – **जो पुरुष...** पुरुष अर्थात् आत्मा। कोई भी आत्मा **परम भक्ति अनुराग से... परम भक्ति अनुराग से...** पाठ में है न? '**परमभत्तिराएण**' दूसरे पद में अन्तिम शब्द है। छेल्ला अर्थात् अन्त का। हमारी गुजराती थोड़ी आ जाती है। '**परमभत्तिराएण**' परम भक्ति के राग से **जिनवर के चरणकमलों को नमस्कार करते हैं...** '**जिणवरचरणंबुरुहं**' पाठ है। वीतरागविज्ञानघन जिसकी दशा में प्राप्त हुआ, ऐसे जिन अर्थात् गणधर, उनके वर अर्थात् तीर्थंकर सर्वज्ञ। '**चरणंबुरुहं...**' उनके चरणरूपी कमल '**अंबुरुहं... अंबु**' अर्थात् पानी में प्रगट होनेवाला कमल... '**अंबुरुहं...**' पानी में-जल में उत्पन्न हुआ कमल, ऐसे जो भगवान के चरणकमल, उसको जो नमता है... वास्तव में तो...

एक बार स्तुति करते थे समन्तभद्राचार्य सर्वज्ञ परमात्मा की। समन्तभद्राचार्य (कहे), प्रभु! आपको अभव्य जीव नहीं नमते, नहीं नमेंगे। जिसको अन्तर में विकल्प-राग की रुचि है (और) भगवान आत्मा सच्चिदानन्द निर्मल आनन्द शुद्ध परम आनन्द का कन्द है, ऐसी जिसको रुचि, दृष्टि और विकल्प उठते हैं—दया, दान, व्रत, तप, जप, भक्ति का शुभविकल्प का उत्थान होता है, उसकी जिसको रुचि-प्रीति-प्रेम-प्रियता है ऐसा अभव्य नालायक जीव, प्रभु! आपको वन्दन नहीं कर सकता। समझ में आया?

धन्नालालजी! क्या कहते हैं? समन्तभद्र आचार्य ने 'स्वयंभू स्तोत्र' बनाया है। चौबीस तीर्थंकर स्तवन... रेलमछेल स्तुति करते हैं। विकल्प आता है तो ऐसी भक्ति आये बिना रहती नहीं। समझते हैं कि विकल्प का छेद तो हमसे होता है, कोई करनेवाला नहीं। हम ही कर्ता, हम ही कर्म, हमारा करण, हमारा सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण—छहों क्रिया हमसे उत्पन्न होती है, पर से उत्पन्न होती नहीं। परन्तु स्तुति करते-करते ऐसे बोले, प्रभु! अभव्य जीव की प्रकृति-ग्रन्थि ऐसी है... शुभराग का कण जिसमें उत्पन्न होता है, उसकी एकता, उसकी रुचि (विभाव) के साथ छूटती नहीं और राग के कण को आदर देता है ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव, भगवान! आप सर्वज्ञ परमात्मा आपको नहीं नमेगा। उसका नमन तो राग में गया है। समझ में आया?

राग उत्पन्न होता है न? विकल्प है? जब तक निर्विकल्पदशा पूर्ण न हो, तब (तक) सम्यग्दृष्टि धर्मी को भी राग तो आता है, परन्तु है वह दोष। अशुभ से बचने को भी शुभ दया-दान, भक्ति आदि का विकल्प तो आता है, परन्तु है वह दोष। तीव्र पाप का परिणाम, वह महान दोष और शुभ लागणी—वृत्ति का विकल्प उठते हैं दया-दान-भक्ति-व्रत-तप-पूजा का, वह अल्प दोष है। दोष... दोनों ही दोष हैं। दोनों ही आत्मा के गुण या आत्मा की शान्ति में कारण नहीं है। भगवान! जब तक पूर्ण वीतराग अविकारी आत्मा की पूर्ण दशा की प्राप्ति न हो, तब तक ज्ञानी को भी भगवान को नमने का विकल्प आता है। तो कहते हैं कि वो नमते हैं, ये आपका वीतरागीस्वरूप (समान) अपना भान करके नमते हैं और अज्ञानी प्राणी जिसके अन्त:करण में शुभराग दया-दान आदि पुण्य का प्रेम-रुचि वर्तती है और उससे मेरे लाभ होगा, शान्ति मिलेगी, धर्म होगा, गुण-गुणी का भेद करने से भी विकल्प उठते हैं, ऐसे राग से मुझे लाभ होगा, प्रभु! ऐसा माननेवाला अभव्य आपको नहीं नमेगा। यह तो राग को ही नमता है। राजमलजी! राग को ही नमता है?

अन्तर में गहरी-गहरी मिठास... चैतन्यप्रभु ज्ञाता-दृष्टा का पिण्ड, अखण्ड आनन्द का कन्द की रुचि न होकर, व्यवहार... व्यवहार... व्यवहार क्रियाकाण्ड का विकल्प, नामस्मरण, जप, भक्ति, पूजा, दान, दया, यात्रा (आदि के) विकल्प उठते हैं, वह राग

है, धर्म नहीं। वह विकल्प के प्रेम में-व्यभिचार में पड़ा है, उसकी उल्टी दृष्टि राग से हटती नहीं। बात तो कठिन हैं, हों हेमराजजी! समझना पड़ेगा। तीन काल-तीन लोक में दूसरा मार्ग नहीं। समझ में आया? तीन काल-तीन लोक में, यह कहने में आता है, ऐसा सत्य का दूसरा पंथ है नहीं। भगवान आत्मा सच्चिदानन्द सत्... सत्... सत्... सत्... सत्... सत्... सत्... शाश्वत् सत् ज्ञान-आनन्द का कन्द है। उसकी अन्तर में रुचि राग के अवलम्बन बिना होती है और उसमें स्थिरता भी राग के आश्रय बिना होती है। आता है बीच में, जब तक पूर्ण न हो, तब तक राग आता है, परन्तु अज्ञानी-मिथ्याश्रद्धावान तो वो राग को ही सर्वस्व मानकर, उससे मेरा कल्याण हो जाएगा, वो कर्मकाण्ड-क्रियाकाण्ड से मेरा कल्याण (होगा)—ऐसा माननेवाला मूढ़ जीव है। वह राग की प्रीति के पक्ष में चढ़ गया है।

जैसे परस्त्री के पडखे चढ़ जाता है। 'पडखा' समझते हो? 'पडखे' को क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : पास में।

पूज्य गुरुदेवश्री : पडखे—पास में... पास में लो न भाई! तुम्हारी हिन्दी भाषा बहुत नहीं आती। पास में चढ़ जाते हैं, उस राग के पास में... यह स्त्री के पास में-पडखे चढ़ जाता है, वो व्यभिचारी है, ऐसे हे नाथ! शुभराग का कण उठता है, उसके पास में चढ़ जाता है, उससे मेरा कल्याण (होगा, ऐसी मान्यता है) वो व्यभिचारिणी दृष्टि है। समझ में आया? डॉक्टर! व्यभिचारिणी दृष्टि है। भगवान! आप अव्यभिचारिणी पूर्ण दशा को प्राप्त है, तो व्यभिचारिणी दृष्टिवन्त आपको नहीं नमेगा। समझ में आया? बाहर से भले नमे... बाहर से भले नमे। अन्तर में अविकारी स्वभाव जिसको जँचा नहीं, रुचा नहीं, प्रतीति में आया नहीं, उसके पोषण में आया नहीं, तो राग का पोषण करनेवाला, मान्यता करनेवाला, स्थापन करनेवाला, उसमें लाभ माननेवाला, दुनिया को (कहनेवाला) कि राग से लाभ होगा, क्रम-क्रम से राग की ऐसी क्रिया करो, क्रिया से लाभ होगा। ऐसा मूढ़ प्राणी आपकी वीतरागीविज्ञानघन दशा को नहीं नमेगा। बराबर है? यहाँ तो नमनेवाला सम्यग्दृष्टि लिया है। समझ में आया?

हे आत्मा ! **परम भक्ति अनुराग से...** ऐसा शब्द लिया है। **जिनवर के चरणकमलों को नमस्कार करते हैं...** परम भक्ति... ऐसा उल्लास कि जैसे माता की गोद में बालक पड़ा हो और उसको माता के प्रति प्रेम आता है; वैसे ही सर्वज्ञ वीतराग त्रिलोकनाथ कि जिनको चैतन्य आनन्दघन (ऐसी) प्रगट दशा हुई, उनके प्रति गोद में जाते हैं, प्रभु! मोटाने उत्संग नानाने शी चिंता? वेलजीभाई! लो! यह का यह शब्द बोले, बदला कुछ नहीं। कुछ शब्दफेर है न थोड़ा? इसलिए तो तुमको कहा 'मोटाने उत्संग...' क्या शब्द है? 'बैठाने' कुछ शब्द है 'मोटाने उत्संग, बैठाने शी चिन्ता, तेम प्रभु परम प्रसाद, सेवक थया निश्चिन्ता।' देखो यहाँ सेवक को, भगवान सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ आत्मा की सम्यक् चीज़ को आदर देकर राग आता है, तो उसमें वन्दन करते हैं।

तो कहते हैं, हे प्रभु! आपके चरणकमल में नमते हैं। प्रभु! हमें आपका ही शरण है। उसका अर्थ कि आपकी जो महिमा-बढ़ाई आपको प्रगट हुई, ऐसी मेरी दृष्टि में हमारा स्वभाव प्रगट मानने में आया है। अब, हमारी स्थिरता बाकी है, तो रमणता करते-करते आप जैसी पर्याय प्रगट करनेयोग्य हम हो गये हैं। समझ में आया? उसे सर्वज्ञ परमात्मा का परम भक्त व्यवहार से कहने में आता है। समझ में आया? जिसका दोष बिल्कुल निकल गया है, ऐसा निर्दोष परमात्मा... जिसको दोष रुचते हैं... पुण्य-पाप कि शुभ-अशुभभाव दोष रुचते हैं, वह निर्दोष भगवान को मानता नहीं। वह निर्दोष भगवान को नमन करता नहीं। बराबर है धनालालजी! 'मोटाने उत्संग...' प्रभु! आपके चरण में पड़े हैं, छीए हों। यह दास... दास सम्यग्दृष्टि ही हो सकता है, दूसरा दास नहीं हो सकता। भगवान सच्चिदानन्द प्रभु शुद्ध ज्ञायक की दृष्टि, रुचि, परिणति हुई, राग बाकी है, पूर्णता नहीं है, तो कहते हैं, प्रभु! हम आपके दास हैं। वो साधकजीव ही भगवान का दास हो सकता है। राग और पुण्य से धर्म माननेवाला मिथ्यादृष्टि भगवान का दास नहीं हो सकता। समझ में आया?

तो कहते हैं, **परम भक्ति अनुराग से जिनवर के चरणकमलों को नमस्कार करते हैं, वे श्रेष्ठभावरूप 'शस्त्र' से... श्रेष्ठभावरूप 'शस्त्र'...** 'श्रेष्ठ' का अर्थ शुद्धभाव... शुद्धभाव... भगवान की भक्ति का विकल्प है, उसकी भक्ति है, परन्तु अन्दर में आत्मा

के स्वभाव की रुचि, दृष्टि... मेरा चिदानन्द एकरूप सम स्वभाव है, ऐसी रुचि, दृष्टि हो गयी है—ऐसे उसके आश्रय से जो शुद्धभाव प्रगट होता है, ये **श्रेष्ठभावरूप 'शस्त्र' से जन्म अर्थात् संसाररूपी बेल के मूल जो मिथ्यात्व आदि कर्म उसको नष्ट कर डालते हैं (खोद डालते हैं)**। खोद डालते हैं। वास्तविक वीतराग चैतन्यस्वभाव की रुचि करनेवाला वह ही भगवान की वास्तविक भक्ति करने आये। भ्रमणा... राग, विकल्प, परवस्तु मेरी है न मेरे में है—ऐसी जो भ्रमणा (है, उसे)—चैतन्य ज्ञायक की दृष्टि करते हैं उसकी रुचि से, परिणति से, अवस्था से वह भ्रमणा आदि कर्म को—जिनवर के दास नाश कर सकते हैं। राग के दास नाश कर सकते नहीं। समझ में आया?

संसारीरूपी बेल... मिथ्यात्व आदि कर्म उसको नष्ट कर सकते हैं। मिथ्यात्व आदि है न? चारित्रदोष हो, सब है... संसार नष्ट करते हैं—नाश कर डालते हैं। अवस्था में (दोष) है, (मलिन) अवस्था है। मलिन अवस्था न हो तो निर्मलता का प्रगट अनुभव होना चाहिए। और अन्तर स्वभाव में पूर्ण निर्मलता न हो तो प्रगट कहाँ से होगी? कोई बाहर से चीज़ आती नहीं। अन्तर में जो अखण्ड आनन्द शुद्ध चिदानन्दमूर्ति स्वभाव पड़ा है... उसकी दशा में जो पूर्ण आनन्द हो तो मलिनता का अनुभव नहीं होता। मलिनता का—राग को अनुभव है, वह मलिन है। तो तब तक राग है, तब तक निर्मल पूर्ण दशा का अनुभव नहीं है। परन्तु आत्मा की दृष्टि का अनुभव हो गया, तो कहते हैं, प्रभु! आप तो... आपको पूर्ण दशा प्रगट हुई है। आपका सेवक निश्चिंत है। अल्प काल में हम राग आदि को स्वभाव की श्रेष्ठ भावना से नाश करेंगे। उसमें हमें सन्देह नहीं है। हम आपके जैसी दशा प्राप्त करेंगे। ऐसे सम्यग्दृष्टि भगवान को नमन करते (हुए) अपनी भावना को उछालते हैं। समझ में आया?

भावार्थ - अपनी श्रद्धा-रुचि-प्रतीति से जो जिनेश्वरदेव को नमस्कार करता है... जिनेश्वर अर्थात् जिन। जिन अर्थात् राग और अज्ञान जीतकर जिसने वीतराग विज्ञानघनदशा प्राप्त की, ऐसे जिनेश्वरदेव को श्रद्धा-रुचि-प्रतीति से नमता है। अब आया, देखो! **उनके सत्यार्थस्वरूप सर्वज्ञ वीतरागपने को जानकर...** भगवान पूर्णानन्द की प्राप्ति जिसे हुई, वो सत्यार्थस्वरूप सर्वज्ञ है। एक समय में तीन काल-तीन लोक

जानते हैं और वीतराग है (अर्थात्) कषायदोष रहित है। ऐसा जानकर... **सत्यार्थस्वरूप...** सच्चा स्वरूप **सर्वज्ञ वीतरागपने को जानकर भक्ति के अनुराग से नमस्कार करता है।** ओहो! ऐसा कहनेवाला... वास्तविक तत्त्व की ऐसी उपदेश शैली सर्वज्ञ भगवान सिवा आती नहीं। ऐसे अन्तर्दृष्टि का प्रेमसहित भगवान के चरणकमल को नमता है, **तब ज्ञात होता है कि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का यह चिह्न है।** समझ में आया? बाबूभाई! बात भी बहुत... परन्तु शर्त बहुत हों इसमें। समझ में आया? शर्त... शर्त समझते हो? क्या कहते हैं तुम्हारे? शर्त... शर्त। एक तो भगवान शुद्ध चिदानन्द परमानन्द... अपना ही स्वभाव है। कोई बाहर से आनेवाला नहीं है। ऐसी चीज़ की रुचि जमी और राग आदि आता है उसकी रुचि छूट गयी। ऐसे जीव पूर्णानन्द की प्राप्ति का प्रयत्न अन्तर में करते हैं, वे ही सत्यार्थस्वरूप सर्वज्ञ वीतराग का जानते हैं। दूसरे सत्यार्थस्वरूप सर्वज्ञ वीतराग का जानते नहीं। समझ में आया?

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का यह चिह्न है। अन्तर का वीतरागभाव—अकषाय निर्दोषस्वभाव रुचा और जरा अस्थिरता का राग-चारित्रदोष बाकी है, (तो) भगवान के प्रति उछलता प्रेम है, ओहो! उसने पूर्ण परमात्मा की बात की। उन्होंने (मार्ग) बताया, उन्होंने अपना मार्ग किया और (जिस विधि से) प्राप्त किया वो विधि हमको कही। ऐसे प्रेम से जो वन्दन करते हैं, **तब ज्ञात होता है कि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का यह चिह्न है, इसलिए मालूम होता है कि इसके मिथ्यात्व का नाश हो गया।** तब ज्ञात होता है कि उसकी भ्रमणा... राग से, निमित्त से, संयोग से धर्म मानना, वह सब भ्रमणा मिथ्याभ्रम है—(उसका) नाश हुआ। **अब आगामी संसार की वृद्धि इसके नहीं होगी,...** लो। अल्पकाल में उसके रागादि नाश होकर परमात्मा ... सादि-अनन्त शुद्ध आनन्दकन्द (दशा) प्रगट हो जाएगी। ऐसा जानिये कि इसके संसार-भव है नहीं। **इस प्रकार बताया है।** कहो, समझ में आया कुछ?

आगे कहते हैं कि जो जिनसम्यक्त्व को प्राप्त पुरुष है, सो वह आगामी कर्म से लिप्त नहीं होता है। भगवान आत्मा राग और कर्म से निर्लेप भिन्न चीज़ है। ऐसा अन्तर में बोध हो गया... भगवान प्रभु चैतन्यमूर्ति... दृष्टा आता है। जिसमें कललिनी का पत्र

पानी में लिप्त नहीं होता। कमलिनी का पत्र... ऐसा भगवान चिदानन्द पूरा आत्मा, क्षणिक राग होता है और कर्म का संयोग सम्बन्ध है, उससे निराला तत्त्व है। निराला है। तो राग, पुण्य विकल्प का संग नहीं। तो कर्म का-जड़ का तो संग उसमें है नहीं। ऐसी अपने स्वभाव का जिनसम्यग्दर्शन हुआ, तो कहते हैं कि **वह आगामी कर्म से लिप्त नहीं होता है।** भविष्य का कर्म का उसको बन्ध होता नहीं।

जह सलिलेण ण लिप्पइ कमलिणिपत्तं सहावपवडीए।
तह भावेण ण लिप्पइ कसायविसएहिं सप्पुरिसो ॥१५४॥
यथा सलिलेन न लिप्यते कमलिनीपत्र स्वभावप्रकृत्या।
तथा भावेन न लिप्यते कषायविषयैः सत्पुरुषः ॥१५४॥

जैसे... वह अपने दृष्टान्त आ गया है १४वीं गाथा, समयसार में। **जैसे कमलिनी का पत्र अपने स्वभाव से ही...** कमलिनी के पत्र का स्वभाव ही ऐसा है। उसके नीचे सूक्ष्म-सूक्ष्म रोम ऐसी कोरी (रूखी) है कि पानी में पड़ा दिखे कि डूबा (दिखे, परन्तु) ऊपर बिन्दु अटके नहीं। चोख्खा (सूखा) पड़ा रहे। कमल के पत्र ने नीचे रुंवाटी ऐसे कोरी... कोरी... कोरी... है। रुंवाटी समझते हो? सूक्ष्म, सूक्ष्म। रुंवाटा वह तो वनस्पति है। परन्तु उस जाति की सूक्ष्म-सूक्ष्म होती है। ऐसे उठाओ, पानी से कुछ लेना-देना नहीं। पानी से छुआ ही नहीं, पानी में डूबा ही नहीं, पानी से सम्बन्ध हुआ ही नहीं। ऐसा प्रकृति-स्वभाव है। किसका? वो कमलिनी के पत्र का। **जल से लिप्त नहीं होता है...** वह दृष्टान्त दिया।

वैसे सम्यग्दृष्टि सत्पुरुष है... भगवान आत्मा राग, पुण्य-पाप के विकल्प से मेरी अन्तर्मुख चीज़ भिन्न है और कर्म और शरीर से मेरी चीज़ अत्यन्त असंग-भिन्न है। ऐसा अन्तर में सम्यग्दर्शन-बोध हो गया, वह सत्पुरुष है। **वे अपने भाव से ही क्रोधादिक कषाय...** से लिप्त नहीं होता। उसे कर्म का बन्ध होता नहीं। क्योंकि कर्म का बन्ध का कारण वह करता नहीं। स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... ज्ञाता-दृष्टा जगत को और ज्ञेय-दृश्य (उसका) ज्ञाता-दृष्टा। जगत के दृश्य का दृष्टा मैं हूँ, ज्ञेय का ज्ञाता हूँ, दूसरा कोई सम्बन्ध मुझे है नहीं। ऐसी अन्तर्दृष्टि हुई, वो कषाय-क्रोध-मान-माया आदि (रूप)

होता नहीं और विषय की वासना की गन्ध भी उसको होती नहीं। कोरा रहता है, परन्तु स्वभाव की एकाग्रता की भावना में वो भी क्रम-क्रम से छूट जाते हैं। उसको कर्म का बन्ध नहीं होता।

यहाँ तो पानी का दृष्टान्त आया। कमलिनी को जल स्पर्श नहीं करता। अड़ता क्या? छूता नहीं। कमलिनी के पत्र को जल कभी छूता ही नहीं। ऐसे सत्पुरुष सम्यग्दृष्टि जीव... नारियल-श्रीफल में जैसा गोला भिन्न है... श्रीफल में मीठा... मीठा... सफेद खोपरा है, वह छाल से भिन्न है, काचली से भिन्न है और काचली की ओर की लालिमा होती है, उससे भी भिन्न है। ऐसे भगवान आत्मा शरीररूपी काचली से भिन्न है। शरीररूपी छाल। ऊपर का छाल होता है न? उस छाल को दलकर आटा निकालते हैं न? अन्दर कर्मरूपी आठ कर्म के रजकण सूक्ष्म मिट्टी-धूल वो काचली है, वो काचली से (भी) भिन्न है। और लालिमा अर्थात् पुण्य-पाप के विकल्प से भी भगवान तो भिन्न है। चैतन्यमूर्ति वो राग से भी भिन्न है। ऐसी जिसको दृष्टि हो गयी—सम्यग्दर्शन हुआ, वो विकार से, बन्ध से लिपाता नहीं। समझ में आया? देखो! यह भावशुद्धि का अधिकार। भावप्राभृत है न? भावप्राभृत। शुभ भी भाव है, अशुभ भी भाव है और शुद्ध भी भाव है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-भोग वासना, काम, क्रोध यह अशुभभाव है, पापवासना है। दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप, यात्रा, नामस्मरण, कोमलता ऐसा विकल्प वह सब शुभरागरूपी दोष है। उससे भगवान आत्मा भिन्न है, ऐसी दृष्टि हुई, बन्धन नहीं है उसको। वो अल्पकाल में राग आदि से छूट जाएगा और परमात्मपद की प्राप्ति-मुक्ति हो जाएगी। कहो, समझ में आया?

भावार्थ - सम्यग्दृष्टि पुरुष के... 'सम्यक् —सच्ची दृष्टि।' 'सच्ची दृष्टि' का अर्थ-पूर्ण आनन्द और ज्ञानस्वभाव की प्रतीति हुई और राग से पृथक्, निमित्त से पृथक् अपना स्वभाव (है, ऐसा) भेदज्ञान किया। ऐसा सत्पुरुष सम्यग्दृष्टि के **मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषाय का तो सर्वथा अभाव ही है।** उसको भ्रमणा होती नहीं कि राग से लाभ है, निमित्त से लाभ है।—ऐसा मिथ्या अभिप्राय होता नहीं। अनन्तानुबन्धी नहीं। अनन्त संसार का कारण क्रोध-मान-माया-लोभ (कि) जो स्वभाव का अनादर करता

है। शुद्ध चिदानन्द का अनादर होता है, ऐसा क्रोध, मान, कपट और लोभ सम्यग्दृष्टि-धर्मी की स्वभावदशा में होता नहीं।

अन्य कषायों का यथासम्भव अभाव है। हास्य, रति (आदि) दूसरे कषाय का रस मन्द जितना पड़ता है, इतना थोड़ा कषाय अभाव हो गया है। **मिथ्यात्व...** विपरीत मान्यता—विपरीत अभिनिवेष—मिथ्या-झूठा आशय (कि) पुण्य से धर्म (मानना) और वर्तमान में अल्पज्ञ पर्याय है, उसको पूर्ण मानना और निमित्त आदि से लाभ माने, ऐसी वर्तमान दृष्टि जिसकी है—ऐसा जो मिथ्यात्व और **अनन्तानुबन्धी...** कषाय उसके **अभाव से ऐसा भाव होता है...** उसके अभाव से ऐसा निर्मल शुद्धभाव पर्याय में-अवस्था में प्रगट होता है।

जो परद्रव्यमात्र के कर्तृत्व की बुद्धि तो नहीं है... क्या कहते हैं? आत्मा का सम्यक् भान हुआ, तो देह आदि की क्रिया मैं करता हूँ, ऐसी बुद्धि का नाश हो जाता है। देह, वाणी आदि जड़ मैं कर सकता हूँ कि वाणी मैं बोल सकता हूँ—(ऐसा) तीन काल में आत्मा में नहीं। वाणी के कारण से वाणी निकलती है, शरीर के कारण से शरीर चलता है। उसकी वर्तमान जड़ की क्रिया-पर्याय-अवस्था आत्मा कर्ता है ही नहीं। समझ में आया? धर्मी सम्यग्दृष्टि ज्ञानी जीव ऐसा अपने को समझता है, मानता है कि परद्रव्य, शरीर, वाणी, मन, आहार, पानी—वह सब जड़ परपदार्थ है। उसका पलटना उसके आधीन है—जड़ के आधीन है। मेरा काम कुछ नहीं है उसमें। मैं बोलता भी नहीं, मैं चलता भी नहीं, मैं उपदेश देता नहीं, मैं खाता नहीं, मैं पीता नहीं। वह तो जड़ का काम जड़ में होता है। ओहोहो! कहो, देवीलालजी! ऐसी दृष्टि, धर्म के शुरुआतवाले की भी ऐसी सम्यक् दृष्टि हो जाती है।

ये तो जहाँ-तहाँ अभिमान... ऐसा शरीर का काम किया, ऐसी वाणी हमने की। दो घण्टे ऐसा व्याख्यान दिया कि लोग रंजन-मंजन हो गये। अरे मूढ़! समझ तो सही! वह वाणी तो जड़ की ध्वनि उठती है, रजकण की ध्वनि उठती है। आत्मा में कहाँ वह रजकण पड़ा है? आहाहा! समझ में आता है? आत्मा तो ज्ञानस्वरूप चिदानन्द ज्ञाता-दृष्टा है। वाणी के रजकण की ध्वनि उसमें पड़ी है? उसकी खाल में रजकण धूल है?

यह धूल की ध्वनि उठती है। अज्ञानी वाणी या देह की क्रिया का कर्ता होता है, ज्ञानी उसका कर्ता नहीं होता। समझ में आया?

मुमुक्षु : व्यवहारनय उड़ गया?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहारनय उड़ गया।

व्यवहारनय से कहने में आता है, क्या? कहने में आता है, परन्तु ऐसा है नहीं—इसका अर्थ ऐसा समझना। व्यवहारनय से कहने में आता है और अभूतार्थदृष्टि से कहा गया है और असत् कथन से कहा है, (परन्तु) ऐसा है नहीं।—ऐसा अर्थ व्यवहारनय का समझना। समझ में आया? बोलने में ऐसा आता है कि उसने बोला, उसने उपदेश दिया, परन्तु ऐसा है नहीं। वह तो जरा विकल्प का सम्बन्ध है और उसका सम्बन्ध देखकर कहने में आया है। परन्तु रजकण-एक आँख की पलक भी चलती है, वह आत्मा के अधिकार की बात नहीं। भगवान आत्मा ज्ञाता चिदानन्दमूर्ति है। वह ज्ञान का एक अंश उसको अर्पे तो क्रिया होती है, (ऐसा) तीन काल में नहीं है। ओहोहो! समझ में आया?

परद्रव्यमात्र के... परद्रव्यमात्र क्यों कहा? सब परद्रव्य (की क्रिया)—खाना, पीना, लेना, देना। यह वचन कौन बोलता है? कहाँ गया? यह क्या है? ये वचन कौन बोलता है?

मुमुक्षु : भाषावर्गणा।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाषावर्गणा, लो। ये भाषावर्गणा बोलती है—ऐसा कहता है बालक। भाषावर्गणा रजकण का पिण्ड-समूह पड़ा है, उसमें से भाषा निकलती है। (भाषा) कहाँ आत्मा में पड़ी है? समझ में आया? रूपचन्दजी! भाषावर्गणा बोलती है। ओय माँ! वर्गणा समझे? रजकण का समूह-वर्ग... वर्ग... समूह। रजकण का समूह पड़ा है उससे वो ध्वनि (उठती है)। भाषावर्गणा। शरीर भी नहीं, शरीर भी बोलता नहीं। शरीर भिन्न चीज़ है, वाणी भिन्न चीज़ है। भिन्न-भिन्न का कार्य भिन्न-भिन्न होता है। यह तो भान नहीं (और) जहाँ-तहाँ मैंने किया... मैंने किया... मैंने किया। लो। 'मैं करूँ मैं करूँ यही अज्ञान है, गाड़ी का भार ज्यों श्वान ताणे।' कुत्ता... कुत्ता... कुत्ता। मोटुं शकट-गाड़ी। छह मण भार भरा हो और कुत्ता नीचे चलता हो, उसका सिर छूता

हो जरा, वह मानता है कि मेरे कारण यह चलती है। अरे! ५०-५० मण के, १०० मण के बैल चलाते हैं। तेरे ऊपर पड़े तो मर जाये, कुचल जाये।

इसी प्रकार जगत के पदार्थ स्त्री, कुटुम्ब, शरीर और वेश आदि की जड़ की अवस्था, वो उसके कारण से होती है। दूसरा कहता है कि हमारे से देश का सुधार हुआ। पर का सुधार हुआ। हम पर का सुधार कर सकते हैं। कहते हैं कि वह मिथ्यादृष्टि मूढ़ जीव है। उसको पर और स्व की भिन्नता का भान है नहीं। बराबर होगा? लो। कुँवरजीभाई! कहते हैं कि यह कुछ करता नहीं—ऐसा कहते हैं। मुफ्त का मोटर लेकर जाता है। वहाँ मुफ्त का अभिमान करते हैं, ऐसा कहते हैं। अब तो नहीं जाता हो। वह जाने नहीं देता हो। परद्रव्यमात्र का कुछ करता (नहीं)। ऐसी छाप है तुम्हारी, हों!

परद्रव्यमात्र के कर्तृत्व की बुद्धि तो नहीं है... ओहो! समझ में आता है? पोपटभाई! यह पैसा-बैसा धूल, कहते हैं कि प्राप्त कर सकता नहीं—ऐसा कहते हैं। यह पाँच-पाँच लाख की, दस लाख की धूल है न मिट्टी। यह तो मिट्टी-कंकड़ धूल है। तेरे में क्या पड़ा है? और तेरी ताकत से वो चीज़ आती है? धूल में काम में आती नहीं। क्या काम में आती है। इतनी आती है कि वो मेरा है (ऐसी) ममता में निमित्त पड़ता है। कोई दूसरे काम में आती नहीं वो चीज़। वह तो जड़ है, मिट्टी है, धूल है, अजीव है। अरे... अरे! क्या करना? अरे प्रभु! तेरी चीज़ क्या है तू समझ ले। और परचीज़ उसके कारण से पलटती है, बदलती है, टिकती है। क्या तेरे कारण से (बदलती) है? शरीर की क्रिया, तेरा निरोग रहने का भाव है तो भी निरोग नहीं रहती है। वह तो जड़ की अवस्था है। ... कि शरीर को मैं निरोग रखूँ। तब तो कोई रोग होवे ही नहीं शरीर में। वह तो जड़ की-परमाणु की-पुद्गल की अवस्था को, आत्मा मानता है कि मैं करता हूँ, मूढ़ है।

सम्यग्दृष्टि ऐसा मानता नहीं। धर्मी मानता है कि मैं तो ज्ञान हूँ। मैं तो वह होता है, उसको जानता हूँ। मेरे से हुआ, ऐसा मैं मानता नहीं। यह जहाँ-तहाँ... मैं करूँ... मैं करूँ... मैं करूँ... अभिमान... अभिमान... साधु नाम धरावे तो अभिमान। मैंने ऐसा उपदेश दिया, लोगों को ऐसा रंजन कर दिया। अरे भगवान! तुम कौन हो? कहाँ (पर में) गये

(हो) तुम ? कहीं तेरे ज्ञान का कोई भाग वाणी में आ गया है ? कोई तेरे ज्ञान का अंश पर में प्रवेश कर गया है कि तूने कुछ दूसरे का किया ? सम्यग्दृष्टि जीव को **परद्रव्यमात्र के कर्तृत्व की बुद्धि तो नहीं है...** बराबर होगा वाडीभाई ? धर्म की दृष्टि हुई नहीं, असत्य दृष्टि है, वह जहाँ-तहाँ जगत की चीज़ का स्वामी होकर-मालिक होकर कर्ता मानता है। मानता है, कर सकता नहीं। समझ में आया ?

परन्तु शेष कषायों के उदय से कुछ राग-द्वेष होता है... कहते हैं कि आत्मा का भान हुआ है, इतना राग और भ्रमणा गयी। थोड़ा राग है। **उसको कर्म के उदय के निमित्त से हुए जानता है।** राग आदि होता है, वह मेरे स्वभाव की चीज़ नहीं। कर्म के निमित्त का जितना-थोड़ा संग है, उससे उत्पन्न वह तो उपाधिभाव है। सम्यग्दृष्टि-धर्मी अपने को परद्रव्यमात्र का रखनेवाला, करनेवाला, बनानेवाला, व्यवस्थापक नहीं मानता और थोड़ा राग बाकी है, उसे उपाधि मानता है। वो तो राग है। थोड़ा राग तो आता है, जब (तक) वीतराग सर्वज्ञ न हो तब (तक)। **इसलिए उसमें भी कर्तृत्वबुद्धि नहीं है...** राग मैं रखता हूँ, ऐसी उसकी बुद्धि तो विकार है... विकार (का) व्यापार है। आत्मा के स्वभाव में कुछ लाभ करनेवाला (नहीं)। परिणति जरा कमजोरी से आ जाती है। मैं (उसे) रखने का कर्ता (भी नहीं)। सम्यग्दृष्टि गृहस्थाश्रम में आत्मा का अनुभव सम्यग्दर्शन हो तो भी ऐसे (कर्ता) मानता नहीं।

तो भी उन भावों को रोग के समान जानकर... यह विकल्प उठते हैं दया-दान, वासना जरा राग के **उन भावों को रोग के समान जानकर...** रोग... रोग... रोग... रोग... रोग अच्छा है ? रोग रखने की इच्छा है ? **जानकर अच्छा नहीं समझता है।** १०४ डिग्री ताव-बुखार अच्छा है ? नहीं। ९९ डिग्री ? अच्छा नहीं ? अच्छा तो कहते हैं लोग। अरे ९९ डिग्री भी जो छह महीना चले तो जिथरी में फोटो लेना पड़े कि क्या है। कुछ है या नहीं ? अन्दर फेफड़ा में रोग... समझ में आया ? एक पुण्य का राग विकल्पमात्र भी रोग है। उसको अच्छा माननेवाले को क्षयरोग पड़ा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ९९... परन्तु तुमको खबर नहीं डॉक्टर को ? ९९... ९९... ९९

थोड़ा अन्दर (बुखार) रहता है बहुत थोड़ा सा। कितने साल से है? छह माह। कुछ-कुछ फेफड़ा में दर्द होगा। फेफसा में क्या कहते हैं? छिद्र पड़े छिद्र। छिद्र पड़े न, छिद्र। यहाँ जिथरी फोटो लेनेवाला। बहुत ऐसे लोग आते हैं। जवान हो... शरीर में कुछ नहीं था। खून तो अच्छा है। कहीं भी छह मास से... फोटो पाड़े तो कहे, क्षय है। हें! ... दूसरे भाग में गया नहीं। कदाचित् मिटे तो मिटे। लाओ खाट लाओ। जिथरी है न खाटला। ऐसे ९९ (बुखार जैसा) राग का एक कण भी भला जाने, ये रोग को भला जाननेवाला है। सम्यग्दृष्टि राग को भल जानता नहीं।

इस प्रकार अपने भावों से ही कषाय-विषयों से प्रीति बुद्धि नहीं है... इस प्रकार अपने भावों से ही... धर्मी को कषाय अर्थात् क्रोध, मान, माया, लोभ, पाँचों इन्द्रिय के विषय भाव उसमें **प्रीति बुद्धि नहीं है, इसलिए उनसे लिप्त नहीं होता...** सम्यग्दृष्टि उनसे लिप्त होता नहीं। **जलकमलवत् निर्लेप रहता है।** राग और परद्रव्य से भिन्न कर्ता होकर निर्लेपदृष्टि में रहते हैं। **इससे आगामी कर्म का बन्ध नहीं होता।** इससे आगामी कर्म का बन्ध उसको होता नहीं। **संसार की वृद्धि नहीं होती है...** भव बढ़ते नहीं। **ऐसा आशय है।** इस गाथा का ऐसा आशय कहने में आया है। विशेष कहेंगे...

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन - 3
भावपाहुड़, गाथा - 110, 111

११० गाथा है। (कोष्ठक में है)। **निरन्तर स्मरण में रखना...** ऐसा आया था न पहला। दीक्षा काल की निरन्तर भावना करना। यह टीका का शब्द है। भाषाकार ने रखा है। **क्या ? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के वृद्धि हेतु...** पहला यह तर्क है कि सम्यग्दर्शन... आत्मा का स्वभाव है, वह उसका माल है। अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द आदि तत्त्व का माल-स्वभाव, वह वस्तु स्वभाव है। उसका भान होकर मूल पहली प्रतीति—सम्यग्दर्शन हो और उस स्वरूप का शुद्ध चैतन्यस्वभाव जो है अन्दर माल-तत्त्व, उसका ज्ञान हो और उसमें रमणता हो-उसकी वृद्धि के हेतु... यह तीन तो है, कहते हैं। विशेषरूप से मुनि की व्याख्या है न ? तीन तो है, परन्तु तीन की वृद्धि के हेतु **हे मुनि! दीक्षा के समय की अपूर्व उत्साहमय तीव्र विरक्त दशा को...** लिया स्मरण में। सम्यग्दृष्टि जीव जब दीक्षा—चारित्र लेता है, उस समय की उसे दीक्षा समय की अपूर्व उत्साहमय तीव्र विरक्ति है। मानो बिल्कुल पर के ऊपर लक्ष्य ही नहीं करूँ और अन्तर में जाऊँ, ऐसी तीव्र उत्साहदशा उस समय होती है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव भले हो, परन्तु पश्चात् शुद्धि की वृद्धि... लक्ष्य वहाँ है न ? वैराग्य—राग से रहित, स्वरूप सन्मुख के झुकाववाला चिन्तवन, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वृद्धि का कारण है।

दीक्षा के समय... यह तो सच्ची दीक्षा, हों! यह अभी साधारण लेते हैं, वह कहीं दीक्षा नहीं है। यह तो आत्मा का स्वभाव—माल जिसे अन्दर का भासित हुआ है। मैं एक चैतन्य के स्वभाव—मालवाली चीज़ हूँ, तत्त्व हूँ, पदार्थ हूँ, वस्तु हूँ। मुझमें तो अनन्त आनन्द का माल बसा है। उसकी पर्याय उसका माप करती है।

मुमुक्षु : वह क्या है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय की दर्शन-ज्ञान पर्याय उसका माप करती है कि यह पूर्ण है, ऐसा। माल... वस्तु है न तत्त्व—पदार्थ। उसका जो त्रिकाली स्वभाव—तत्त्व का सत्त्व पूरा, ध्रुव तत्त्व, उसका जिसने ज्ञान की पर्याय में माप निकाला है कि यह चीज़ ऐसी है। और उस ज्ञान में उसका माप ऐसा है, ऐसा आने पर उसे जो प्रतीति होती है, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। और वह स्वरूप अर्थात् माल की कीमत हुई, पर्याय में माप किया, प्रतीति हुई। तदुपरान्त अब मेरे स्वरूप में जो शक्तिरूप है, उसे पर्याय में लाने को, अन्तर रमणता करना, इसका नाम चारित्र है। इन तीन की वृद्धि के हेतु से विचार करना, ऐसा कहते हैं।

दीक्षा के समय ऐसा वैराग्य अन्दर आवे। पूरी दुनिया से मानो उदास... उदास... उदयभाव से भी उदास... मुनिपना अर्थात् क्या! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभाव सन्मुख।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, गुणस्थान तो छठवाँ-सातवाँ। दीक्षा के समय जो भाव था न, वह इतना था, बस। बाद में तो दीक्षा हुई, वहाँ वह तो सातवें (गुणस्थान में) ध्यान में रहे, परन्तु दीक्षा के पहले (भाव) तो ऐसा होवे न? एकदम पूर्ण पर से हटकर अन्दर में जाना है। ऐसा जयधवल में आता है न? जयधवल। मैंने तो दीक्षा के समय शुद्धोपयोग अंगीकार किया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह। मैंने तो शुद्ध उपयोग... जिसमें शुभभाव भी नहीं आता। आहाहा! जयधवल। तब प्रश्न आया था वींछिया (में)। (संवत्) २००० के वर्ष। तीस वर्ष हुए। ....(संवत्) २०००। उसमें यह आया था। कहा, वहाँ कहा था पहले।

देखो! यह मुनिपना! अत्यन्त उग्र उत्साह से आत्मा मेरी चीज़ जो मूल वस्तु है,

उसमें रमण करना, यह मैंने प्रतिज्ञा की थी। आहा! परन्तु यह शुभभाव आया महाव्रत आदि का, आहार लेने की वृत्ति आयी, वह मेरा प्रत्याख्यान भंग हो गया। आहाहा! वाणी तो देखो दिगम्बर सन्तों की! यह कुछ कहते हैं न? आहाहा! अरे! मैंने तो आत्मा के अन्तर आनन्दस्वरूप में रमना, ऐसी मैंने प्रतिज्ञा की थी, इसके अतिरिक्त दूसरा नहीं। आहा! अरे! यह पाँच-पचास वर्ष या लाख-दो लाख वर्ष में जो कुछ शुभ उपयोग आया और उसमें मैं अटका, वह मेरी प्रतिज्ञा का भंग हुआ है। आहाहा! गजब बात है न!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मुनि (पना)—यहाँ तो उत्कृष्ट की बात ली है। उसमें आता है जयधवल में, यह पाठ है। मैंने तो मेरे शुद्ध उपयोगरूपी लिंगपना ग्रहण किया है। पंच महाव्रत के विकल्प, ऐसा नहीं।

यह तो मोक्षमार्गप्रकाशक में भी आता है न? मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है, शुरुआत में। मैंने तो शुद्धोपयोगरूपी मुनिपना जो मोक्ष का साधन है, उसे मैंने अंगीकार किया है। आहाहा! मैं तो उदयभाव से मर गया हूँ। मेरे शुद्ध उपयोग से रमण करूँ, वह मेरी चीज़ है। आहाहा! ऐसे मुनिपने की प्रतिज्ञा ली थी, (उसमें) बीच में आहार की वृत्ति आयी, यह शुभ उपयोग, धर्म उपदेश करना और महाव्रत के परिणाम... आहा! देखो तो सही! दिगम्बर के तीव्र वचनों के कारण... आता है न श्रीमद् में? रहस्य समझा जा सकता है कि अहो! वीतरागता का वर्णन! जिसे (ऐसा लगता है कि) पंच महाव्रत के परिणाम से भी मेरी प्रतिज्ञा में भंग हुआ है। आहाहा! मैं फिर प्रतिज्ञा लेता हूँ मरण के समय, समाधिमरण के समय... आहाहा! देह छूटने का काल है। मैं फिर प्रतिज्ञा लेता हूँ। मुझे तो शुद्ध उपयोग में रहना है। आहाहा! तब यह प्रत्याख्यान करके देह छोड़े समाधिमरण में। आहाहा! देह छूटने का समय तो आयेगा या नहीं? सबको नहीं आयेगा? जवानों को बाद में आयेगा, ऐसा होगा? आहाहा! पर से पृथक् अत्यन्त उदास हूँ, मेरे स्वरूप में सावधान हूँ। आहाहा! उसकी दीक्षा के प्रति जो उत्साह था, ऐसी विरक्तदशा को याद करता है। आहाहा! यह तो सच्ची दीक्षा की बात है न? सम्यग्दर्शनसहित की बात है। आहाहा!

दीक्षा अर्थात् जो आत्मा का स्वभाव—स्व-भाव—शाश्वत् वस्तु का भाव—आनन्दभाव, ज्ञानभाव, नित्यानन्दभाव, प्रभुता की पूर्णता की स्वच्छता का भाव, ऐसा जो मेरा स्वभाव—उसे मैंने जो अनुभव में, प्रतीति में लिया है, अब मेरे माल में मुझे रमना है। आहाहा! मेरी घर की चीज़ में मुझे रमना है, इसका नाम चारित्र है। आहाहा! कहो, वजुभाई! पहले जानना तो पड़ेगा या नहीं कि वस्तु की स्थिति ऐसी है? आहाहा! परन्तु वस्तु है न? महावस्तु माल। एक समय की पर्याय, वह तो बारदान है, उस माल का माप करनेवाला है। आहाहा! वस्तु है न? राग-द्वेष तो नहीं, परन्तु वर्तमान पर्याय जो है, वह पर्याय त्रिकाली वस्तु का माप करती है, माल को तौलती है। आहा! ऐसी सम्यग्दर्शनपर्याय, सम्यग्ज्ञानपर्याय में ऐसा माल जिसे अन्तर में बैठा है। परन्तु वह वस्तु है न? सत्व है न? सत् का सत्त्व है न? सत्पना है न? पूर्ण आनन्द और पूर्ण स्वच्छता और पूर्ण प्रभुता वह उसका मूल स्वरूप-माल है। उस माल का माप करके जिसे अन्तर में प्रतीति हो गयी है, उसे अब दीक्षा काल में अन्तर रमणता में तो इतनी उत्सुकता होती है कि अब मैं तो इसमें ही आऊँ, बस हो गया। बाहर निकलना ही नहीं। आहाहा!

ऐसी **अपूर्व उत्साहमय तीव्र विरक्त दशा को...** स्मरण में लावे। आहाहा! एक बात। **किसी रोगोत्पत्ति के समय...** कठोर रोग आया हो शरीर में। आहा! एक लड़की जवान थी १२-१३ वर्ष की। उसे राणपुर में हड़के कुत्ते ने काट लिया। अपने प्रेमचन्दभाई थे न, उनके मित्र थे, मोढ। उनकी पुत्री थी। उसका पिता मर गया था। वह प्रेमचन्दभाई, नहीं? ...उसे हड़के कुत्ते ने काट लिया। उसमें हड़का कुत्ता... न दिखायी दे पानी, न पिलाया जाये पानी, न दिया जाये आहार, न लगाया जाये पंखा, इतनी पीड़ा उसे (कि) हवा भी नहीं की जाये। आहाहा! ऐसे रोग के समय कैसा वैराग्य हो! वैराग्य करे तो।

मुमुक्षु : वैरागी को....

पूज्य गुरुदेवश्री : वैरागी को... आहाहा! प्रेमचन्दभाई को कहे, काका! वे मोढ थे। ....बहुत मित्र थे। वे तो बेचारे मर गये। प्रेमचन्दभाई बैठे हुए थे। काका! मुझे कहीं चैन नहीं पड़ता। मुझे क्या पीड़ा होती है, वह मैं कह नहीं सकती। मुझे कुछ खबर नहीं पड़ती। पीड़ा... पीड़ा... पीड़ा... हड़का कुत्ता... कहीं चैन नहीं पड़ती। आहाहा! सोने

पर सोया नहीं जाता, बैठने पर बैठा नहीं जाता, हवा का पंखा लगाया नहीं जाता, पानी पीया नहीं जाता, आहार लिया नहीं जाता। आहाहा! यह २४ घण्टे या ४८ घण्टे में उसकी देह ऐसी छूट जायेगी। आहाहा! देखो! यह रोग के काल। उस समय धर्मात्मा को वैराग्य ऐसा आता है... आहाहा! यह शरीर!

एक गाय को मैंने देखा था हीराभाई के मकान में थे न तब। एक गाय थी, उसको हड़के कुत्ते ने काट लिया। गाय बड़ी लट्ठ जैसी। गाय चारों ओर घूमा करे... न पीवे पानी, नहीं आहार, नहीं हवा। अरेरे! यह चौबीस घण्टे या थोड़े घण्टे रही। ... कुछ था उसमें पड़-पड़कर तड़फती थी। शरीर देखो तो निरोग जवान अवस्था थी, उस गाय की। एक पुलिस निकली। पुलिस को कहा, यह क्या है यह? यह क्या स्थिति होती है देखी तूने? देह की यह स्थिति है, बापू! आहाहा! आत्मा अन्दर देह से भिन्न चीज़ है, उसकी खबर नहीं। वह पुलिस भी बेचारा... देखो! कहा, देखो! यह तड़पती है। आहाहा! उसमें कौवे मारे... पूँछ हिला सके नहीं। देखो! यह दशा शरीर की। आहाहा! ऐसे रोग के काल में जब वैराग्य की वृत्ति खड़ी हुई हो, तब कहते हैं कि याद रखना भाई! आहाहा! दुनिया की लालच में भूल नहीं जाना, भाई! ऐसे काल में कैसे भूल जाता है आहार-पानी? आहाहा!

लाठीवाली महिला का नहीं कहा था? बहुत बार कहा है। लाठी की जवान लड़की थी और रूपवान। दो वर्ष की विवाहित। उसके पति ने नया विवाह किया था। पुरानी मर गयी थी। शीतला निकली। दाने-दाने में कीड़े। धीरुभाई का मकान है न वहाँ? अपने तलकचन्दभाई, नहीं? उनके डेला में पीछे थे। रजाई में डाली हुई। ऐसे जवान अवस्था, रूपवान शरीर। नयी विवाहित, उसमें बहुत... आहाहा! ऐसे शरीर करे तो, माँ! मैंने ऐसे पाप इस भव में नहीं किये। मुझसे कुछ सहन नहीं होता। क्यों क्या होता है, क्या करना, कुछ सूझ नहीं पड़ती। ऐसे घूमे तो हजारों कीड़े ऐसे (पड़ें), ऐसे घूमे तो हजारों कीड़े ऐसे पड़ें। दाने-दाने में कीड़े पड़े हुए। आहाहा! ऐसे रोग के समय को याद करना, भाई! आहाहा! उसे नहीं, परन्तु तुझे भी ऐसा हो तो क्या होगा—ऐसा याद करना, बापू! आहाहा!

ऐसे रोग की उत्पत्ति के काल में... आहाहा! महिला की एकदम जवान अवस्था थी, हों! जवान महिला थी। बेचारी नरम महिला थी। नरम थी। बहुत बार आवे न, ऐसी की ऐसी सूख गयी, फिर मर गयी। आहाहा! न भावे खाना, न भावे पीना, न नींद आवे, न जागना ठीक पड़े। कुछ ठीक नहीं पड़ता। आहाहा! आता है न? शरीर में कितने करोड़ रोग होते हैं? कितने रोग? ऐई धनजीभाई!

मुमुक्षु : ५६८९६५८४।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! यह रूपवान शरीर अच्छा लगे। उसमें जब पाँच करोड़ रोग रोम-रोम में फटें। अभी आयेगा अपने इसमें। अन्तिम। पहली गाथायें... है न? ३४ गाथा... एक-एक अंगुल में ९६-९६ रोग है। आहाहा! है न इसमें? कितने में? १५० पृष्ठ। गाथा ३७, लो। ३७ गाथा है। यह अपने पड़ी रही। ३७ गाथा है।

एक्केक्कंगुलि वाही छण्णवदी होंति जाण मणुयाणं।
अवसेसे य सरीरे रोया भण किंत्तिया भणियाण॥३७॥

आहाहा! मनुष्य के शरीर में एक-एक अंगुल में ९६-९६ रोग... एक इतनी अंगुल इतने में ९६ रोग। ऐसे पूरे शरीर में... समझ में आया? आहाहा! एक-एक इतना (वेढियुं को) अंगुल कहा जाता है। उसमें ९६ रोग। ऐसे पूरे शरीर में... प्रस्फुटित हो तब खबर पड़े। आहाहा! अन्त में मरण के समय ऐसे हाय... हाय...! आँखों में से आँसू बहते जायें। ...भाई के पुत्र अमुलख थे। नानालालभाई के काका के पुत्र। नानालालभाई करोड़पति। सब खड़े थे। पूरा कमरा भरा था। उनके तीनों भाई करोड़पति—नानालालभाई, मोहनभाई, बेचरभाई। उनके काका का पुत्र था। हमारा चातुर्मास वहाँ था (संवत्) १९९९ में। मरने का समय और बुलाया मांगलिक सुनाने को। वहाँ बेचरभाई ने हाथ में प्लेट में जरा मोसम्बी लेकर उसे देने के लिये दी। परन्तु वह हाथ में पकड़ नहीं सका और आँख में से आँसू की धारा बहे। यह सब भाई करोड़पति थे। क्या हाल डाले न ऐसे? उस समय की दशा देखी हो तो.... ९९ के वर्ष की बात है। ३२ वर्ष हुए। राजकोट में। भाई! ऐसे अवसर को याद करना, कहते हैं। आहाहा! शाताशीलिया होकर खाने-पीने के भाव को भूल जाना अब ऐसे अवसर में। आहाहा!

यहाँ आया न? **रोगोत्पत्ति के समय की उग्र ज्ञान-वैराग्य सम्पत्ति को...** देखो! भाई! आहाहा! अरेरे! एक क्षण भी शरीर में रहना ठीक नहीं—ऐसा लगे इसे। उसमें चिल्लाहट करे। कीड़ें चलें, दाह हो, झबकारा बोले उसके अन्दर में अग्नि के। अग्नि की चिंगारियाँ हों, ऐसा पूरे शरीर में लगे, पैर में अग्नि की दाह लगती हो। आहाहा! इस प्रकार उसके अन्तड़ियों में ऐसे... ऐसे रोग के समय धर्मी को ज्ञान और वैराग्य की सम्पत्ति प्रगट हुई है, उसे याद करना, भाई! आहाहा! वे शरीर के रजकण भी मेरे विचारानुसार नहीं होते, यह मैं किसे कहूँ कि ऐसा करना? आहाहा!

कहते हैं कि ऐसे अवसर में, हे मुनि! ऐसे रोग के काल को याद करना। उस समय की वैराग्य और ज्ञान की सम्पदा को याद करना, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उस समय का ज्ञान, उस समय का वैराग्य। आहाहा! यह आत्मा के मोक्षमार्ग की वृद्धि के हेतु ऐसी भावना करना। दुनिया को भूल जाना। आहाहा! दुनिया कहाँ है और क्या है, वह उसके घर में रही। मुझे कुछ मदद करे, ऐसा है नहीं। आहाहा! आँख में से आँसू, भाई! बेचरभाई की आँख में से आँसू बहते थे। इनके उनको डबल निमोनिया था। सुलावे ऐसे नीचे रखते हुए... मरण की तैयारी... पीड़ा... पीड़ा... पीड़ा... धारा बहती जाये आँख में से। बेचरभाई की आँख में से आँसू बहे। आहाहा! नानालालभाई के भाई बेचरभाई। बड़ा शरीर... स्वयं मरते हुए असाध्य हो गये न, कुछ हार्टफेल हुआ। बेचरभाई असाध्य रहे थे। ...ऐसा कुछ हुआ था। असाध्य... असाध्य... कुछ खबर नहीं होती। स्थूल शरीर ऐसा... आहाहा!

बापू! इस जड़ के रोग के काल में जिस समय ज्ञानी को ज्ञान और वैराग्य की दशा होती है, उस दशा को याद करना। आहाहा! ऐसे याद करना नहीं कि मैंने ऐसे सातारूप से ऐसा लिया और बहुत खाया और पीया। मर गया अब। खाया-पीया क्या था? आहाहा! खाया-पीया वह राग था। आहाहा! राग में तो रुदन था। आत्मा की शान्ति रगड़ जाती थी। आहाहा! यह खाने-पीने के उत्साह में, प्रभु! शान्ति को तो तूने रगड़ मारी है। आहाहा! यह तो अन्तर के मार्ग की शुद्धि की वृद्धि के लिये ऐसी भावना करना, ऐसा कहते हैं। तेरा तो माल पड़ा है। बड़ी दुकान है अन्दर। आहाहा! महा

गोदाम है। तेरा ध्रुव महा गोदाम है। आहाहा! अरे! यह बात जँचे कैसे? भाई! परन्तु तू वस्तु है न, नाथ! तत्त्व है या नहीं? पदार्थ है या नहीं? वह पदार्थ एक समय की दशा में आ गया है? आहाहा! एक समय की पर्याय पलटती दशा, उसमें यह माल पूरा आ गया है? वह तो पूरा भिन्न है। आहाहा! ऐसे स्वभाव की सन्मुखता की दृष्टि-ज्ञान-चारित्र प्रगट हुए हैं, उसकी शुद्धि की वृद्धि के लिये ऐसी भावना करना, भाई! यह तो भाई! जिसे आत्मा का कल्याण करना हो, उसकी बातें हैं। दूसरे को तो (ऐसा लगे कि) यह क्या लगायी है? मार डाला। तो हमारे संसार का कुछ करना रहा नहीं न? कौन करे? बापू! सुन न भाई! राग और द्वेष, संकल्प और विकल्प करे। आहाहा!

दो बातें हुई। **किसी दुःख के अवसर पर प्रगट हुई उदासीनता...** ऐसा कोई दुःख आये हों, पुत्र मर गया हो बीस वर्ष का। दो दिन का विवाहित मर जाये और उस समय उसे वैराग्य हो। आहाहा! दुःख का प्रसंग है न! आहाहा! एक गाँव में एक भाई मर गया। दूसरे भाई को नहीं कहा जाता क्योंकि उसकी भी मरने की तैयारी थी। एक मर गया और श्मशान में ले गये। जलाकर यहाँ आये, वहाँ वह मर गया। उसे कहा नहीं जाता कि वह मर गया है दूसरा भाई। आहाहा! ....ऐसे दुःख के प्रसंग (तेरे साथ) भी बने हों। आहाहा! यह बिलख-बिलख कर रोता हो उस समय। अरेरे! मेरे दुःख किसे कहूँ? कुँवरजीभाई कहते थे।

ज्ञानी को उस दुःख के प्रसंग में वैराग्य हो गया होता है। आहाहा! लड़का मरा हो, लड़की विधवा हुई हो, मकान जल गया हो, बीमावाला उसी समय भाग गया हो। हाँ, चारों ओर की लगी हो ठीक से। ऐसे प्रसंग में, हे ज्ञानी! याद करना तेरे वैराग्य को। आहाहा! यह दुःख के अवसर। पहला था दीक्षा के वैराग्य की, दूसरा था रोग उत्पत्ति का ओर का, तीसरा दुःख का प्रसंग, ऐसा। लड़की विधवा हुई हो, लड़का मरा हो, स्त्री मरे छोटी उम्र में और दो-दो वर्ष के अन्तराल के सात-आठ लड़के हों। दस-दस लड़के हों, लड़कियाँ हों। उस समय स्त्री मर जाये, उम्र ५० वर्ष की हो, उस समय उसे (वैराग्य को) याद करना, बापू! तुझे क्या... ? यह तो ज्ञानी की बात है न। ऐ फूलचन्दभाई! आहाहा! उसको तो कुछ नहीं होगा। वह मरेगी तो मैं दूसरी करूँगा। बड़ी उम्र हो तो

दूसरी नहीं होती। परन्तु यह तो धर्मी की बात है। धर्मी को ऐसे बाहर के प्रसंग आये हों और उस समय उसे ज्ञान और वैराग्य की धारा हो, उसे तू याद करना, भाई! ऐसा कहते हैं। आहाहा! २५-२५ वर्ष की लड़की हो, घर में पालन-पोषण किया हो, खिलाया-पिलाया सब हो और वह विवाह करके हरिजन के घर में चली जाये, वह प्रसंग हो, तब क्या होता होगा? यह ख्रिस्ती-ख्रिस्ती (ईसाई) लेकर चले जाते हैं न, अभी तो बहुत होता है न? आहाहा! यह सब होता है। आहाहा!

इस काल में ऐसा काल... इस वैराग्य के काल में ऐसा सब होता है। २५-२५ वर्ष की लड़कियों का भरण-पोषण करके (बड़ी की हो), मोटर में घूमने की छूट दी हो, मोटर का (ड्राईवर) सिक्ख हो, उसे लेकर चला जाए। सिक्ख क्या कहलाता है? सिक्ख कहलाता है न? मुम्बई में हुआ है। यह तो सब बने हुए हैं न? सरदार। हाँ, सरदार। यह सच्ची बात है। आहाहा! धर्मी को भी संसार में ऐसा प्रसंग आ जाये, कहते हैं। आहाहा! उस समय उसे वैराग्य और ज्ञान की धारा आती है। आहाहा! उस समय का प्रसंग है यह। धर्मी के प्रसंग की बात है। हों! आहाहा! उसे कहाँ मुँह दिखाना, कहाँ करना, ऐसा हो जाता है। हाय... हाय...! पाँच (लोगों) में सामने बैठकर बातें की हो बड़ी-बड़ी। उसे घर में आकर (खबर पड़ी कि) यह हुआ। हाय... हाय...! ज्ञान और वैराग्य हुआ हो धर्मी को, ऐसे प्रसंग में उसे तू याद करना। धर्मी को कहते हैं। प्रगट उदासीनता... उदास... आहाहा!

घर में २० वर्ष का लड़का मर गया हो और सर्दी के दिनों में पाक बनाया हो, वह सालमपाक को क्या कहा जाता है? सवेरे उड़दिया और... उन सब पर उदास हो जाये उदास... हाय... हाय...! एक पिता था। इकलौती लड़की, उसके प्रति इतना प्रेम। कोई नहीं था और लड़का मर गया था और इकलौती लड़की। प्रेम बहुत। अफीम का बंधाण बहुत अफीम का बंधाण बहुत। वह लड़की मर गयी और जलाकर आये। अरेरे! जिसके प्रति मैंने पूरा राग ढोला। स्त्री नहीं, पुत्र नहीं, इकलौती पुत्री थी। अरेरे! वह छोड़कर गयी, तो यह अफीम छोड़ा न जाये अब? उस अफीम की डिब्बी डाल दी। अफीम का ही बंधाण... डाल दिया। आहाहा! ऐसे प्रसंग। पुत्री और पिता—दो। पिता

और (पुत्री) दो व्यक्ति। उसमें इस एक के प्रति बहुत प्रेम। वह मर गयी, उसी जलाकर आया और आहाहा! यह अफीम का समय आया न, बापू! लो न। अरे भाई! उस पुत्री के बिना चलेगा या नहीं अब? तो अफीम बिना नहीं चलेगा? वह अफीम की डिब्बी थी उसे फेंक दिया। ऐसे प्रसंग को याद करना, बापू! ऐसा कहते हैं। आहाहा! पण्डितजी! आहाहा! अफीम छोड़ दी। ....छोड़ दी, अफीम का बंधाण था, वह छोड़ दिया। इकलौती लड़की बिना चलता है, अब मैं अकेला रहा। आहाहा!

कहते हैं कि जिसे आत्मा का भान हुआ है कि मैं एक चैतन्य आनन्द के मालवाला तत्त्व हूँ। मुझमें अतीन्द्रिय आनन्द है, मेरा आत्मा आनन्द का गोदाम है। आहाहा! ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द को खोलकर अर्थात् निकाल सकूँ अन्दर से, आहाहा! ऐसी जिसे प्रतीति और ज्ञान और रमणता हुई है, ऐसे धर्मी को, ऐसे प्रसंगों को याद करके शुद्धि को बढ़ाना, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कोई मेरा नहीं, मैं किसी का नहीं, यह तो दृष्टि में था। यह तो चारित्र की अस्थिरता की व्याख्या में है न! आहाहा! वस्तु का स्वभाव, वह मेरा शरण है, वह मुझे भासित हुआ है। अब दूसरा कोई शरण जगत में नहीं है। ऐसी भावना करके दर्शन-ज्ञान-चारित्र की शुद्धि को बढ़ाये। आहाहा! जयन्तीभाई! तुम्हारे दो व्यक्तियों में ऐसा प्रसंग बना न हो। और.... तीन बोल कहे।

किसी उपदेश और तत्त्वविचार के धन्य अवसर पर... आहाहा! यह दूसरा बोल कहते हैं। कोई ऐसा तत्त्व का उपदेश आया, उस समय धन्य पल में उसे वैराग्य हो गया हो अन्दर से। आहाहा! कोई उपदेश और तत्त्वविचार... या वह स्वयं तत्त्व के विचार में-धारा में... 'आनन्दस्वरूप मैं हूँ' ऐसी विचारधारा में कोई उल्लसित वीर्य प्रस्फुटित हुआ हो अन्दर। आहाहा! **धन्य अवसर पर जगी पवित्रता...** आहाहा! धन्य समय में अन्दर आनन्द के नाथ आत्मा को जगाकर जो सम्यग्दर्शन और ज्ञान में आत्मा को बाहर लाया है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे **धन्य अवसर पर जगी पवित्रता अन्तःभावना को स्मरण में रखना**। उस समय जो वैराग्य की भावना प्रगट हुई हो, उसका उपदेश मिला हो सीधा भगवान का, मुनियों का। आहाहा! फाटफाट वैराग्य अन्दर हो गया हो, ऐसे प्रसंग को, हे धर्मात्मा! याद रखना कि जिससे तुझे शुद्धि की वृद्धि हो। बापू! तू

किसी के सामने देखेगा नहीं। आहाहा! **धन्य अवसर पर...** भाषा देखो! किसी उपदेश के काल में या तत्त्वविचार के काल में **धन्य अवसर पर जगी पवित्र अन्तःभावना को स्मरण में रखना। निरन्तर स्वसन्मुख ज्ञातापन का धीरज अर्थ स्मरण में रखना, भूलना नहीं।** इस गाथा का विशेष भावार्थ है।

आगे भावलिंग शुद्ध करके द्रव्यलिंग सेवन का उपदेश करते हैं। अब कहते हैं कि हे मुनि! सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के पश्चात् द्रव्यलिंग धारण करना। सम्यग्दर्शन के भान बिना बाह्यलिंग धारण करेगा तो उसमें आत्मा को कुछ लाभ नहीं होगा। वस्त्र छोड़कर नग्नपना (लेकर) साधु माने, परन्तु अन्तर भाव में सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, इसकी खबर नहीं होती।

सेवहि चुविहलिंगं अब्भंतरलिंगंसुद्धिमावण्णो।
बाहिरलिंगमकज्जं होइ फुडं भावरहियाणं॥१११॥

हे मुनिवर! तू अभ्यन्तरलिंग की शुद्धि अर्थात् शुद्धता को प्राप्त होकर... अभ्यन्तरलिंग अर्थात् आत्मदर्शन—सम्यग्दर्शन। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द का नाथ वह मैं हूँ—ऐसी जिसे अनुभव में प्रतीति हो, तब अभ्यन्तरलिंग—सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ कहलाता है। समझ में आया? यह तो न हो सम्यग्दर्शन (और) कैसे होता है और क्या है, इसकी खबर भी नहीं होती और दीक्षा लेकर बैठता है। वस्त्र छोड़े या नग्न हो नग्न। आहाहा! **हे मुनिवर! तू अभ्यन्तरलिंग की शुद्धि अर्थात् शुद्धता को प्राप्त होकर...** सम्यग्दर्शन को प्राप्त करके, ऐसा कहते हैं। आहाहा! धर्मी को पहला कर्तव्य तो यह है। समझ में आया?

शुद्ध चैतन्यवस्तु भगवान आत्मा का चैतन्य का आत्मा का अन्तरस्वरूप—भावस्वरूप तो उसका अन्तर आनन्द है, अतीन्द्रिय आनन्द का वह तो दल है। आत्मा उसे कहते हैं कि अतीन्द्रिय आनन्द का दल-पिण्ड, उसे आत्मा कहते हैं। आहाहा! यह शरीर कहीं आत्मा नहीं है, यह तो जड़-मिट्टी-धूल है। कर्म जड़ है। यह पुण्य और पाप के भाव हों... हिंसा-झूठ-चोरी-विषयभोग, वह पापभाव के विकार अचेतन-जड़ है। यह दया-दान-व्रत-भक्ति-पूजा के भाव होते हैं, वह भी राग और अचेतन-जड़ है। आहाहा! अचेतन है न? जिसमें चैतन्य का तत्त्व नहीं आता, ज्ञान का अंकुर जिसमें

नहीं, उस राग को क्या कहना? चाहे तो व्रत का हो, तप का हो, पूजा और भक्ति का (हो), परन्तु वह राग तो अचेतन है। आहाहा! समझ में आया? अन्दर भगवान आत्मा... यह अचेतन विकल्प और राग के पीछे चैतन्यदल ध्रुव स्वरूप माल पूरा पड़ा है। आहाहा! कढ़ाई का दूधपाक जैसे पड़ा हो कढ़ाई में, उसी प्रकार आत्मद्रव्य में ऐसा अतीन्द्रिय आनन्द का दूधपाक पका हुआ पड़ा है अन्दर। आहाहा! तैयार है। आहाहा! परन्तु अभी सुना नहीं, खबर नहीं कि आत्मा क्या कहलाता है? मैं कौन हूँ, कहाँ हूँ, (इसकी) अभी खबर नहीं होती। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय शान्ति और अतीन्द्रिय स्वच्छता, अतीन्द्रिय प्रभुता (स्वरूप है)। यह बाहर की संघवी की पदवी और यह वकालत की पदवी, यह डॉक्टर की पदवी और यह क्या कहलाता है? संघपति की, यह सेठाई की, यह सब धूल की पदवियाँ हैं। आहाहा! अन्दर में आत्मा के आनन्द का स्वच्छपना, प्रभुता... जिसके स्वभाव की प्रभुता... उस प्रभुता के सामर्थ्य से भरपूर है। परन्तु इसे विश्वास आवे, तब वह सामर्थ्य भासित हो न? कोई ऐसा कहता है कि ऐसा सामर्थ्यवाला है तो फिर ऐसा कैसे? परन्तु सामर्थ्यवाला है, ऐसा इसे बैठा कहाँ है? आहाहा! भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव आत्मा को ऐसा कहते हैं, ऐसी तो इसे खबर भी नहीं। उसमें अनन्त बल है, अनन्त ज्ञान है, अनन्त प्रभुता है। सामर्थ्य का पार नहीं, इतनी प्रभुता भरी है। आहाहा!

तो यह प्रभुता इसे बाह्य में क्यों नहीं आती? कहते हैं। परन्तु, बापू! ऐसी है, ऐसा विश्वास तुझे कहाँ आया है? तेरे लिये तो वह नहीं है। होने पर भी नहीं है। अस्तिपना है, ऐसा जिसने माना, उसे अस्तित्व है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें, बापू! धर्म की बात वीतराग की बहुत सूक्ष्म है। लोग बाहर से मान बैठे हैं न! आहाहा! कहीं अन्त न आवे, ऐसी बात है। यह तो चैतन्य भगवान अन्दर, आहाहा! बड़े तालाब में उतरने की सीढ़ियाँ होती हैं न अन्दर? उनसे उतरा जाता है। पूरी चारों ओर वह क्या कहलाती है?

मुमुक्षु : पाळ।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाळ से कहीं उतरा जाता है? मिट्टीवाली होती है, वह होती

है, पैर खिसककर चला जाये। किनारा हो वहाँ उतर जाये। इसी प्रकार आत्मा को सम्यग्दर्शन-ज्ञान, वह अन्तर में उतरने का किनारा है। समझ में आया? आहाहा!

भगवान तो पूर्णानन्द से भरपूर, अतीन्द्रिय रस से भरपूर छलाछल भरपूर आत्मा है। यह कैसे जँचे? यह कहीं ५-१० हजार पैदा हो, वहाँ प्रसन्न हो जाये, स्त्री जरा अच्छी मिले वहाँ प्रसन्न हो जाये... अरे! उसे आत्मा में आनन्द है और अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर (है, वह) कैसे जँचे? आहाहा! पामरता के प्रमाण दूसरे प्रकार के हो गये। प्रभुता के प्रमाण और आत्मा की दृष्टि चाहिए, वह नहीं। आहाहा! कहते हैं कि प्रभु तेरा आत्मा, आहा! अभ्यन्तर (लिंग) की प्राप्ति करने के पश्चात् **चार प्रकार के बाह्यलिंग का सेवन कर।** आहाहा! परन्तु इसके भान बिना तू बाह्यलिंग मुनिपना और श्रावकपना लेकर बैठेगा, (तो) सब मिथ्यात्व है। आहाहा! ओहो! भावपाहुड़ता! चैतन्य का निर्विकल्प स्वभाव पूर्ण, एक-एक गुण पूर्ण, ऐसे तो अनन्त गुण का पिण्ड है, अनन्त शक्ति का सामर्थ्य है। ऐसा जो स्वभाव, उसकी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति करके शुद्धि करना, फिर साधुपना लिंग धारण करना। ... परन्तु इसके बिना लिंग धारण करेगा तो मरकर हैरान हो जायेगा। यह तो जहाँ-तहाँ मुनिपना दे दिया। आहाहा!

कल कोई कहता था, बारह वर्ष का लड़का और १४ वर्ष की लड़की—बहिन-भाई, उन दोनों को दीक्षा देनेवाले हैं। अब उसे खबर नहीं होती कि क्या चीज़ है। आहाहा! अरे रे! भगवान के मार्ग को क्या कर डाला! शाक-भाजी जैसा कर डाला। एक बार आया था न अखबार में आया था। आहा! शाक-भाजी की भी कीमत है अभी तो।

मुमुक्षु : बहुत महँगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : महँगा है। रुपये में सेर, ऐसा कुछ कहते हैं। बारह आने सेर यह लौकी-बौकी का। बातें करे अपने कहाँ...? करेला... सबमें महँगाई है न?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : करेला महँगा। इस ऋतु में रस के साथ हो न। कैसे मिलते हैं अभी खबर है?

मुमुक्षु : लौकी दो रुपये किलो।

पूज्य गुरुदेवश्री : २ रुपये किलो, ओहोहो! दो सेर और छह भाग दो रुपये में। एक रुपये का एक सेर और तीन भाग। अरे... अरे...! गजब है न!

यहाँ कहते हैं, भाई! तेरा आत्मा का आनन्द है न अन्दर? उसे एक बार सम्यग्दर्शन में स्वाद लेकर प्रतीति करना, फिर तू लिंग धारण करना। आहाहा! मेरा आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ है, उसका एक बार सम्यग्दर्शन में स्वाद लेकर, शुद्धि प्रगट करके फिर तू मुनिपना लेना। इसके बिना मुनिपना लेकर लिंग धारण करेगा, (तो) तेरा सब निरर्थक जायेगा। आहाहा! ऐसे द्रव्यलिंग तो अनन्त बार धारण किये। आहाहा!

शुद्धता को प्राप्त होकर चार प्रकार के बाह्यलिंग का सेवन कर... यह चार कहेंगे। क्योंकि **जो भावरहित होते हैं, उनके प्रगटपन बाह्यलिंग अकार्य है।** आहाहा! जिसे आत्मा के आनन्द के स्वाद की खबर नहीं, अतीन्द्रिय का स्वाद कैसा होता है और कैसा आत्मा के... उसे यह बाह्यलिंग अकार्यकारी है, कहते हैं। यह साधुपने के वस्त्र ऐसे पहने और... वस्त्र छोड़कर यहाँ नग्न की बात लो न! वह तो साधु भी कहाँ...? अरे! वस्त्रवाले साधु तो द्रव्यलिंगी भी नहीं है। आहा! बातें कठिन पड़े, दूसरे को दुःख लगे, हों! दुःख लगाने के लिये नहीं, प्रभु! वस्तु की स्थिति में स्पष्टता के लिये... भाई! तेरे लिये भी हित की बात है। आहाहा! जो मिथ्यात्व सेवन कर दुःख में पड़े हैं और जिनके फल में भी दुःख होगा, उसका कैसे तिरस्कार करना, उसका अनादर कैसे करना। मात्र जानना कि यह जगत में होता है। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा... कौन कहता है? कि मुनि ऐसा कहते हैं। भाई! तू बारह व्रत या पंच महाव्रत को अंगीकार करने से पहले सम्यग्दर्शन को प्रगट करना। जो शुद्ध चैतन्य है, आहाहा! ऐसी शुद्धता का जिसमें भान हो, प्रतीति हो, साक्षात् हो—ऐसी सम्यग्दर्शन की प्रगटता करके फिर बाह्यलिंग धारण करना। इसके बिना यदि अकेला बाह्यलिंग धारण किया, (तो) अकार्य(कारी) है—कुछ कार्यसिद्धि नहीं होगी तुझे। आहाहा! नरक और निगोद के अवतार बापू! आहाहा! वहाँ कोई सगा-सम्बन्धी मौसीबा नहीं बैठी है कि चल भाई! आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा वस्तु जो है, उसका

यथार्थ सम्यग्दर्शन प्रगट करना, वह अपूर्व बात है, भाई! सम्यग्दर्शन अर्थात् साधारण बात नहीं कि यह देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन। वह सम्यग्दर्शन नहीं है। नव तत्त्व के भदवाली श्रद्धा, वह भी सम्यग्दर्शन नहीं है। सम्यग्दर्शन तो आत्मा आनन्द का नाथ, पूर्णानन्द का नाथ, पूर्णानन्द से भरपूर पदार्थ, उसका जिसे प्रतीति में स्वाद आवे, उस अतीन्द्रिय आनन्द का जिसे स्वाद आवे और उसमें प्रतीति आवे, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। अभी उसकी तो खबर भी नहीं होती और हम धर्म करते है और यह व्रत लिये और तप लिये, वह सब रण में शोर मचाने जैसी बातें हैं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ भगवान ऐसा कहते हैं कि प्रथम सम्यग्दर्शन प्रगट करना। पश्चात् बाह्यलिंग की बातें करना, परन्तु सम्यग्दर्शन की जहाँ खबर नहीं और बाह्य का लिंग ले लिया बारह व्रत का और पंच महाव्रत का, वह सब तेरे अकार्य(कारी) है। भटकने के लिये है—परिभ्रमण के लिये है। आहाहा! क्यों? **क्योंकि जो भावरहित होते हैं, उनके प्रगटपने बाह्यलिंग अकार्य है अर्थात् कार्यकारी नहीं।** आहाहा! जिसे, आत्मा क्या वस्तु है, इसका अनुभव नहीं, अन्तर सन्मुख होकर उसकी प्रतीति की नहीं, उसके सन्मुख जाने के लिये बाह्यलिंग, क्रिया धारण करे, अकार्य(कारी) है, उसका लाभ तुझे नहीं है। आहाहा!

भावार्थ : जो भाव की शुद्धता से रहित है... यह भाव शब्द से सम्यग्दर्शन। यह सम्यग्दर्शन अलौकिक चीज़ है। सब मान बैठे कि हम समकिती हैं... यह अलौकिक बात है, बापू! आहा! **जो भाव की शुद्धता से रहित है, जिनके अपनी आत्मा का यथार्थ श्रद्धान, ज्ञान, आचरण नहीं है, उनके बाह्यलिंग कुछ कार्यकारी नहीं है।** जिसे आत्मज्ञान नहीं, 'ऐगं जानी सव्व जानी...' ऐसा जाननेवाले को जाना नहीं। आहाहा! यह आत्मा का... **अपनी आत्मा का...** भाषा ऐसी है न? भगवान के आत्मा का नहीं। भगवान की आत्मा की श्रद्धा, वह तो राग है। आहाहा! त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव परमात्मा की श्रद्धा, वह भी राग है, वह तो विकल्प है, वह सम्यग्दर्शन नहीं। आहाहा! **अपनी आत्मा का यथार्थ श्रद्धान...** भगवान आत्मा सिद्धस्वरूपी पूर्णानन्दस्वरूप... ऐसा आत्मा का ज्ञान करके उसकी पहिचान करके उसकी प्रतीति होना, उसका यथार्थ वस्तु का

ज्ञान—आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप का ज्ञान और उस आत्मा में रमणता, वह उसका आचरण... आंशिक भी रमणता सम्यग्दर्शन के साथ होती है। समझ में आया? भारी कठिन बातें ऐसी।

एक तो धन्धे के पाप के कारण निवृत्त नहीं होता। स्त्री-पुत्र को पोषण के लिये, कमाने के लिये बेचारा रात के आठ-आठ बजे तक... आहाहा! समय मिले घण्टे भर का तो दूसरा बाहर का सुनने को मिले। उसमें सम्यग्दर्शन क्या और कैसे प्राप्त होता है, यह बात भी सुनने को मिलती नहीं। उसका सब जीवन ढोर जैसा जीवन है। दुनिया में भले इज्जत में गिना जाये कि यह पचास लाख पैदा किये और करोड़ रुपये आये और दो करोड़ आये और पाँच करोड़... बाहर में पहली कुर्सी पड़े।

मुमुक्षु : ....न्याय से कमाने में पाप है?

पूज्य गुरुदेवश्री : न्याय से कमाना वह पाप है। कमाने का भाव ही पाप है। न्यायपूर्वक क्या? आहाहा! दुकान में बैठने का भाव पाप। लिखा था, लोगों को सम्हालना, दुकान-घर को सम्हालना वह पाप। ऐसा होगा प्रवीणभाई? ऐ मुकेश! क्या होगा? यह तेरे पिता सब करते हैं न! तेरे लिये करते हैं? इनके राग के लिये करते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : न्यायपूर्वक में पाप....

पूज्य गुरुदेवश्री : पाप है।

मुमुक्षु : अन्यायपूर्वक में महापाप....

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्याय में बड़ा पाप है। पैसा कमाने का भाव, वही पाप है। आहाहा! न्याय से कमावे, पद्धतिसर कमावे, परन्तु वह भाव तो पाप है न? आहाहा! उसमें आत्मा तो भारी होता जाता है। आहाहा! इसने आत्मा अपनी चीज को नहीं जाना, कहते हैं, और पर के लिये रुककर... यह सब काल व्यतीत किया। आहाहा! यह एक कथा आती है।

एक भाई के लिये दूसरे भाई ने बहुत पाप किये। दूसरे भाई ने पाप बहुत किये, वह मरकर नरक में गया। और जिसके लिये पाप किये थे, वह और वहाँ भवनपति का

असुर(देव हुआ)। दोनों वहाँ (नरक में इकट्ठे) हुए। फिर असुर उसको मारता है। वहाँ उसे याद आती है कि परन्तु भाई मैंने तेरे लिये पाप किये थे न! परन्तु यहाँ कहाँ... किसने कहा था तुझे पाप (करने का) ? छोटे भाई के लिये बड़े भाई ने पाप किये रोग की दवा-बवा में। उसमें वह मरकर नरक में गया, नारकी हुआ और वह जो था, उसने कुछ भाव ठीक किये होंगे, वह असुरकुमार का देव हुआ। वह वहाँ असुर का देव हुआ। मारे उसे उसको। उसमें उसे याद आया, परन्तु भाई! मैंने तेरे लिये पाप किये और तू मुझे मारता है ? परन्तु तुझे किसने कहा था कि मेरे लिये करना ? आहाहा! ऐसा बनता है। अनन्त बार बना है न। हाँ, यह कहाँ नयी बात है ? आहाहा! आत्मा का यथार्थ (श्रद्धान, ज्ञान बिना) बाह्य में कुछ कार्यकारी नहीं। **कारण पाकर तत्काल बिगड़ जाते हैं...** जिसे आत्मदर्शन—सम्यग्दर्शन नहीं, आत्म-अनुभव नहीं, वह बाह्यलिंग और व्रत को धारण करे, वह प्रसंग आवे तो बिगड़कर भ्रष्ट हो जायेगा। आहाहा! उसे आत्मा का लाभ नहीं होगा, इसलिए प्रथम सम्यग्दर्शन की प्राप्ति करने के बाद बाह्यलिंग सेवन करना।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)